मंत्रशक्ति
के
अद्भुत
चमत्कार

मंत्र-शक्ति के अद्भुत चमत्कार

[मन्त्र साधना की चमत्कारी अनुभूतियों का अनोखा संग्रह]

लेखक :

डॉ० चमनलाल गौतम

रचयिता : मन्त्र महाविज्ञान, वैदिक मन्त्र विद्या, मन्त्र योग, मन्त्र शक्ति से रोग निवारण—विपत्ति निवारण—कामना सिद्धि, ओंकार सिद्धि, तंत्र विज्ञान, तंत्र रहस्य, तंत्र महाविद्या, तंत्र महासिद्धि, गायत्री सिद्धि आदि ।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब; वेदनगर, बरेली-२४३००१ उ.प्र.

प्रकाणक :

डॉ० चमनलान गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेदनगर)
बरेली–२४३००१ (उ. प्र.)

❋

लेखक :
डॉ० चमनलाल गौतम

●

द्वितीय संस्करण
१९७५

मुद्रक :
प्रीतमलाल गोस्वामी
रतन प्रेस, अठखम्भा
वृन्दावन, मथुरा.

मूल्य :
तीन रुपये पिचहत्तर पैसे मात्र

भूमिका

शब्द विज्ञान के आविष्कार और सूक्ष्म ध्वनि कम्पनों के उपयोग का श्रेय अरण्यों में तपोसाधना रत उन भारतीय ऋषियों को है जिन्होंने बिना वैज्ञानिक मन्त्रों के सहयोग के महान अनुभूतियाँ सम्पादित की थीं। प्राचीन काल में इस मन्त्र विद्या का इतना व्यापक विस्तार और विकास किया गया था कि जीव के हर क्षेत्र में, हर समस्या के समाधान के लिए इसका सफलता पूर्वक उपयोग किया जाता था। इन महान सफलताओं के वर्णन पुराण, शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं परन्तु आज के बौद्धिक वर्ग को उन पर सहज विश्वास नहीं होता क्योंकि मन्त्र विद्या के लोप होने से उन चमत्कारों का क्रियात्मक प्रदर्शन असम्भव दिखाई देने लगा। इसीलिए मन्त्र विद्या पर से विश्वास उठता गया।

आधुनिक भौतिक विज्ञान ने ध्वनि कम्पनों के सहयोग से चिकित्सा क्षेत्र में असाधारण विकास किया है। 'अल्ट्रा साउण्ड' तो एक चमत्कार सा ही दिखाई देता है। औद्योगिक क्षेत्र में भी ध्वनि कम्पनों ने एक महान क्रान्ति ला दी है। इन प्रत्यक्ष वैज्ञानिक उपलब्धियों को देखकर अब बौद्धिक वर्ग को यह विश्वास होने लगा है कि पुराण-शास्त्रों में वर्णित मन्त्र शक्ति के चमत्कार भी सत्य हो सकते हैं।

ऋषियों ने अनुभव किया था कि स्थूल शरीर तो नष्ट होने वाले हाड़ मास का निर्जीव पुतला है सूक्ष्म शरीर में वह शक्तियाँ विद्यमान हैं जिन्हें जाग्रत और विकसित करके मानव शक्तियों का पुञ्ज बन सकता है। आज मन्त्र विद्या का लोप हो चुका है। फिर भी शेष

बचे ज्ञान के आधार पर जिन साधकों ने मन्त्र साधनाऐं की हैं, उन्होंने इस शक्ति के अद्भुत चमत्कारों को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया है।

कुण्डलिनी जागरण, षट्चक्रों का वेधन, परकाया प्रवेश, यौगिक सिद्धियां, मृतक से जीवित करना, रोग निवारण, आर्थिक सफलता स्मृति शक्ति का विकास, वाक्य सिद्धि, डाकुओं से सुरक्षा, वर्षा पर नियन्त्रण, हिंसक वृत्ति में परिवर्तन, भूत भविष्य के ज्ञान की सिद्धि, सर्प विष की निवृत्ति नैतिक व आत्मिक उत्थान, प्राकृतिक शक्तियों पर असाधारण विजय, संकट निवारण, जटिल समस्याओं का सरल समाधान जैसी मन्त्र शक्ति की चमत्कारी अनुभूतियाँ आधुनिक साधकों से प्राप्त हुई हैं जिन से यह विश्वास होता है कि मन्त्र साधना से आज भी इन सिद्धियों को प्राप्त किया जा सकता है।

इस पुस्तक में प्राचीन व आधुनिक मंत्र सिद्धियों की अनुभूतियों की सत्य घटनाऐं वर्णित हैं। यह और इनसे मिलती जुलती सिद्धियाँ किसी भी साधक को उपयुक्त साधना करने पर प्राप्त होनी सम्भव हैं। आवश्यकता है निष्ठा पूर्वक साधना करने की। मन्त्र विद्या का जितना व्यापक प्रचार हो जायगा उतना ही इन घटनाओं की सत्यता पर विश्वास होने लगेगा। इस पुस्तक से कुछ परिजनों को भी मन्त्र साधना करने की प्रेरणा मिली तो हम अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

—चमनलाल गौतम

विषय सूची

सीमाओं का उल्लंघन कर चुका था। इसलिए उनका परम सम्मान करते हुए उनकी यह बात मानने के लिए बाध्य न हो सका। उन्होंने प्रलोभन तो बहुत दिये थे। साथ ही भयभीत करने का भी प्रयत्न किया था। जब उनकी सभी चेष्टाएँ विफल रहीं तो वे इस बात पर सहमत हो गये कि भले ही मैं संन्यास दीक्षा से पीछे न हटूँ, यदि मैं उनके सामने ही बना रहूँ तो भी उन्हें सन्तोष रहेगा। मेरे गुरु जी इस पर सहमत हो गये और मुझे अपने गाँव जाने का आदेश दे दिया। वहाँ मैं अपने घर पर न रहकर उसी वट वृक्ष के नीचे निवास करने लगा। जहाँ मैंने पहले गायत्री का अनुष्ठान किया था। वहाँ साधना फिर आरम्भ हो गई। एक रात गायत्री माता के दर्शन हुए। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा "अब तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है। अब और अधिक जप साधना करने की अपेक्षा नहीं है। मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ। तुम अपने कल्याण के लिए कोई भी वरदान माँग सकते हो।" गायत्री माँ के स्थूल विग्रह के दर्शन पाकर मेरा हृदय गद्‌गद् हो उठा। मैंने उनसे सविनय निवेदन किया कि मैंने अब संन्यास आश्रम की दीक्षा ले ली है और इस भौतिक संसार को तिलाञ्जलि दे दी है। इसलिए अब मेरी कोई वासना शेष नहीं रही है आपकी प्रसन्नता सदैव मुझ पर बनी रहे, यही मेरा वरदान है। गायत्री माँ ने "एवमस्तु" कहा और अन्तर्ध्यान हो गईं।"

काठिया बाबा की यह सिद्धि गाथा और उनकी सिद्धियों का वर्णन आज भी वृन्दावन के विज्ञजनों से प्राप्त किया जा सकता है।

—★—

काठिया बाबा की यह सिद्धियाँ गायत्री मन्त्र की तपो साधना का फल थीं। वे सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँचने का स्वयं इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"जब मेरा विद्यालय का अध्ययन पूरा हो चुका तो मैं अपने घर वापस आ गया। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि गायत्री मन्त्र को सिद्ध करूँ। हमारे बगीचे के निकट एक विशाल वृक्ष था। उसके नीचे मैंने अपना आसन जमाया और गायत्री साधना आरम्भ कर दी। जप साधना आरम्भ करने से पूर्व मैंने उसके विधि विधान की पूरी जानकारी करली। मुझे यह बताया गया था कि सवा लक्ष मन्त्र जप के अनुष्ठान से गायत्री की सिद्धि प्राप्त होती है। यह बात मेरे मनमें जम गई और मैंने इस अनुष्ठान को परम श्रद्धा से करना आरम्भ कर दिया। अभी जप संख्या एक लाख ही पूर्ण हो पाई थी, पच्चीस हजार मन्त्र जप करना अभी बाकी था, तभी मुझे आकाशवाणी सुनाई दी कि इस स्थान पर तुम्हारा जप कार्य पूरा हो गया है। शेष की पच्चीस हजार मन्त्र साधना यदि ज्वालामुखी पर करोगे तभी तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी।

इस आकाशवाणी के आदेश से मुझे विश्वास हो गया कि अब तक की साधना सफल रही है। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और मैंने शेष साधना ज्वालामुखी पर करने का निश्चय किया। मैंने ज्वालामुखी की ओर प्रस्थान किया। यह स्थान हमारे गाँव से ३०–४० कोस की दूरी पर था। इसी यात्रा में मेरे एक भतीजे ने भी साथ दिया जो मेरे समान वयस्क और मेरा मित्र था। मार्ग में हा हमें एक ओजस्वी आत्मा के दर्शन हुए। मैं उनकी ओर सहसा खिचा चला गया और छोटी सी भेंट में ही उनसे दीक्षित होगया। मेरे भतीजे ने मेरे संन्यासी बनने के प्रयत्नों को विफल करने की बहुत चेष्टा की। परन्तु मैं अपने निश्चय पर दृढ़ बना रहा। तब उसने यह सूचना मेरे पिताजी को दी। उन्हें मेरे संन्यास की दीक्षा से बहुत दुःख हुआ और गृहस्थाश्रम को स्वीकार करने के लिए बहुत समझाया परन्तु मेरा मन तो भौतिक

है और मन्त्र शक्ति के परिणाम को स्वीकार किए बिना कोई चारा नहीं रह जाता।

काटिया बाबा को कभी धन का अभाव नहीं रहा। वे प्राय: आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों की आर्थिक सहायता करते रहते थे। परन्तु किसी दान दक्षिणा की भेंट स्वीकार नहीं करते थे। उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को यह सन्देह था कि उनके पास कोई ऐसा गुप्त-कोष है जिसमें से अधिक से अधिक व्यय करने पर भी वह खाली नहीं होता वरन् उतना ही बना रहता है। लोगों को यह भी आशंका थी कि वह काठ की लंगोटी इस कारण से लगाते हैं कि उसमें पर्याप्त अशरफियाँ सुरक्षित रख सकें। लोगों की यह धारणा तो निर्मूल थी परन्तु किसी गुप्त-कोष की विद्यमानता के सन्देह से ही शायद उनके शिष्यों ने एक साथ दो-दो तोला विष दिया ताकि उनका प्राणान्त हो जाय और उस गुप्त-कोष के स्वामी बन जाँय। परन्तु आश्चर्य है कि उनके शरीर पर तीन बार के विष का भी कोई प्रभाव नहीं हुआ और वे पूर्ववत स्वस्थ बने रहे। उनका मूल नाम तो महात्मा रामदास था। परन्तु काठ की लँगोटी लगाने के कारण उन्हें काठिया बाबा ही कहा जाने लगा।

काठिया बाबा की सिद्धि का लाभ उनके शिष्यों को भी मिला। जब भी उनका कोई शिष्य आर्थिक, कोई अन्य घरेलू संकट या विपत्ति की समस्या लेकर आता, तो वे शीघ्र ही उसकी निवृत्ति कर देते। इसलिए गृहस्थ शिष्यों को उनकी शक्ति पर अटूट विश्वास था। वे प्राय: अपनी शक्तियों का प्रदर्शन नहीं करना चाहते थे। परन्तु किसी संकट को दूर करना वे अपना कर्तव्य समझते थे और अपनी शक्तियों को वितरित करने में संकोच नहीं करते थे। उनका आत्म तेज इतना अपूर्व था कि उनकी आँख से आँख मिलाना सहज नहीं था। महानतम भौतिक साधनों से सम्पन्न व्यक्ति भी जब उनके सामने जाते तो उन्हें भी झुकना ही पड़ता था।

आया तो प्रतीत हुआ कि स्थूल शरीर तो वैसा ही दिखाई दे रहा है परन्तु मनमें असाधारण परिवर्तन आ चुका है। मेरी इच्छाएँ और कामनाएँ एक दम दग्ध हो चुकी थीं। उस समय ऐसा लग रहा था मानों शिव का रूप धारण करके कामदेव को मैंने ही भस्म किया है। मेरे जीवन का दृष्टिकोण एक दम बदल गया। जीवन और उसकी गति-विधियों को एक नये ढङ्ग से निहारने लगा। इस साधना से मुझे आत्म सन्तोष हुआ कि मेरे जीवन की साध पूर्ण हुई। मुझे अनुभव हुआ कि मैं अब ऐसे पथ पर चलने लगा हूँ जहाँ से मुझे अपना परम लक्ष्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

गुप्त कोष से अधिष्ठित-परम सिद्ध काठिया बाबा

वृन्दावन में काठिया बाबा के नाम से एक परमसिद्ध महापुरुष हो गये हैं। उनमें गजब की दूर दृष्टि थी, जो लोगों के अन्तर्मन को पार करके उनके गुप्त रहस्यों को जानने की सामर्थ्य रखते थे। अनेकों बार उन्होंने ऐसी बातें बताईं जिनकी लेशमात्र भी पूर्व जानकारी नहीं थी। इस भेदक दृष्टि से लोगों को अत्यन्त आश्चर्य होता था। परन्तु वह इतने सरल स्वभाव से बताते थे मानों अपने बाह्य नेत्रों से उन्हें स्पष्ट रूप से देख रहे हों। वाक् सिद्धि भी उनकी आश्चर्य में डालने वाली थी। जिसको उन्होंने जो आशीर्वाद दे दिया, वह पत्थर की लकीर बन गया। इस आशीर्वाद से चाहे प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन होता हो परन्तु जब प्रत्यक्ष दर्शन से सत्य प्रतीत होता हो तो उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। ऐसी घटनाओं को देखकर आधुनिक विज्ञान मौन होजाता

इसी उत्साह में मैंने महाराज निर्गुणानन्द जी से संन्यास की दीक्षा ली। अब मैं घूमने के लिए स्वतन्त्र था। ईश्वर दर्शन की मेरी उत्कट लालसा थी। इसकी पूर्ति के लिए अनेकों साधु महात्माओं और सिद्ध तपस्वियों के यहाँ गया। विभिन्न प्रकार के उपाय मुझे बताये गये और मैंने उनके अनुरूप घोर तपश्चर्यायें भी कीं परन्तु उनका कोई परिणाम न निकला।

अब मैं लगभग निराश सा हो चला था और बद्री नारायण की यात्रा की योजना बनाई। वापसी में रुद्र प्रयाग के निकट एक सिद्ध महात्मा के दर्शन हुए। उनके पास कुछ दिन निवास करने का भी सौभाग्य मिला। उन्होने तत्वज्ञान के गूढ़ रहस्यों को सरल रूप में समझाया जिससे वर्षों से विद्यमान मेरे अनेकों भ्रमों और शंकाओं का सहज समाधान हो गया। आत्म साक्षात्कार के लिए उन्होंने गायत्री साधना का आदेश दिया। मैं गायत्री साधना में लग गया। कुछ दिनों में अन्तःकरण में दिव्य प्रकाश की अनुभूतियाँ होने लगीं। मुझे स्पष्ट रूप से सुषुम्ना स्थित छः चक्र दृष्टिगोचर होने लगे। यह एक के बाद एक क्रमशः ही दिखाई दिये। यह चक्र खिले और विकसित फूल की तरह दिखाई देते थे—ऐसे फ़ूल की तरह जिसकी सारी पंखुड़ियाँ पूरी तरह खिल चुकी हैं। मैंने अनुभव किया कि सुषुम्ना नाड़ी में प्राणों का अविरल प्रवाह चल रहा है। मुझे छहों फाटक खुलते दिखाई दिए। इससे प्राप्त अपूर्व आनन्द का वर्णन करना सम्भव नहीं है। मेरी गायत्री साधना निरन्तर चलती रही। एक दिन प्रातः काल चार बजे कटि-प्रदेश में सूर्य रश्मियों जैसा शुभ्र प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। इस प्रकाश में मैंने देखा कि आकाश से बिजली गिरने जैसी गति से एक लाल रङ्ग की सर्पिणी ने मेरे शरीर को लपेटकर जकड़ लिया है। उसकी लपेट को मैं सहन न कर सका और मूर्च्छित हो गया। शरीर में कम्पन होने लगा। जप साधना का तो उस समय छूट जाना स्वाभाविक ही था क्योंकि शरीर संज्ञा शून्य जैसा हो चला था। कुछ देर के बाद होश

से की। उन्होंने मुझे अपनी शक्ति के हस्तांतरण का अधिकारी समझा और एक मध्यरात्रि को मेरी नाभि पर हाथ लगाकर बड़े जोर से धक्का लगाया इससे मेरी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई और मुझे अनुभव होने लगा कि मेरे आत्म साक्षात्कार की स्थिति आ गई है। सारे संसार को मैं ब्रह्मके रूप में निहारने लगा। स्थावर जंगम सभी वस्तुओं में मुझे चैतन्यता दिखाई देनी लगी और तभी से मैं समाधि सुख लाभ करने लगा। उसी दिन से मुझमें इतनी दिव्य दृष्टि आ गई है कि किसी भी व्यक्ति को देखते ही उसके भूत, भविष्य और वर्तमान की जानकारी मुझे ऐसे हो जाती है जैसे मैं स्वयं अपने चर्म चक्षुओं से उसे देख रहा हूँ। परन्तु मैं अपनी इस शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना चाहता। इससे प्रायः बचता ही हूँ।

महाराज जी के यह चमत्कार बौद्धिक क्षेत्र और विज्ञान को एक महान चुनौती हैं परन्तु हमारे शास्त्र तो डंके की चोट पर यह घोषणा करते हैं कि मन्त्र शक्ति से ऐसी शक्तियाँ प्राप्त हुई है और हो सकती हैं।

—★—

षट्चक्र का बेधन

रुद्र प्रयाग के श्रीनिर्मलानन्द संन्यासी गायत्री साधना से कुण्डलिनी जागरण के स्व अनुभव का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

भगवद् भक्ति तो मुझे पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। पिताजी भजन कीर्तन में बहुत रस लेते थे। इसलिए लोग उन्हें भक्त जी कहते थे। भक्ति विकास की ओर मेरी प्रगति सहज में ही होती चली गई। परन्तु मुझे इतने में ही सन्तोष नहीं था। मैं आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ असाधारण सफलतायें प्राप्त करने के लिए उत्सुक था।

भक्त थी। उस समय उस महिला को बहुत तेज बुखार हो रहा था। उसने महाराज जी से थोड़ी भस्म की आकांक्षा की ताकि उसे बुखार से छुटकारा मिले। महाराज जी का उत्तर इस प्रकार से था कि 'आज सोमवार का दिन है, शुक्रवार को तुम्हें भस्म मिलेगी।" यह देखा गया कि शुक्रवार को उस स्त्री का प्राणान्त हो गया अर्थात् वह भस्म में ही मिल गई।

एक बार एक शिष्य महाराज जी के पास बैठे हुए थे। अन्य सब व्यक्ति दरवाजे के निकट ही थे। दरवाजे में से तीव्र बायु का प्रवाह चल रहा था। महाराज जी के निकट एक घृत दीपक रखा था। भक्तों को यह आशंका थी कि तीव्र बायुके झोंकों से दीपक बुझ जायगा। इसलिए एक भक्त ने दरवाजा बन्द करना चाहा। महाराज जी ने जब यह देखा तो दरवाजा खुला ही रहने का आदेश दिया और दीपक के चारों ओर एक सुरक्षा रेखा खींच दी। भक्तों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वायु के झोंके तो तीव्र गति से अन्दर प्रविष्ट हो रहे थे परन्तु दीपक ज्यों का त्यों जलता ही रहा।

अपने एक निकटतम शिष्य से अपनी साधना और सिद्धि की चर्चा करते हुए महाराज जी ने एक बार कहा था—

"मैं बाल्यकाल से ही गायत्री उपासक रहा हूँ। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर नर्मदा किनारे चला जाता और वहीं पर स्नान करके एक वृक्ष के नीचे पूर्व की ओर मुख करके एकाग्र चित्त से गायत्री मन्त्र का कई घण्टे तक लगातार जप करता। सन्ध्या होने पर ही घर लौटता था। तभी एकबार भोजन करता था। मेरे मनमें मोक्ष प्राप्ति की तीव्र इच्छा थी। इसलिए मैं चाहता था कि मुझे कोई सद्गुरु मिल जाय तो यह मेरा लम्बा और कठिन रास्ता सरलापूर्वक तय हो जाय। गायत्री उपासना के फल स्वरूप मुझे अपनी इच्छा के अनुसार सद्गुरु मिल गये। उनसे साधना के मूल्यवान निर्देश भी मिले और मैंने उनकी सेवा भी अत्यन्त श्रद्धा

वहाँ विवश होकर जाना पड़ा। जहाँ नाव खड़ी थी उसके पास एक शिला खण्ड था। उस पर खड़े होकर सामान का भली भाँति निरीक्षण किया जा सकता था। उसके शिला खण्ड पर खड़े होने की ही देर थी कि वह जल में खिसक गया और वह व्यक्ति डूब गया। महाराज जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से इस घटना को देखा और एक घण्टे तक माथा मुंह ढककर सो गये। एक घण्टे के बाद वह व्यक्ति आया। उसे अपनी करनी पर ग्लानि हो रही थी कि महाराज जी ने उस दिन नर्मदा किनारे न जाने की मुझे चेतावनी भी दी थी। परन्तु अज्ञानवश मैंने उसकी उपेक्षा की, परिणाम स्वरूप मैं नदी में डूब गया। मैंने उसी समय सहायता के लिए गुरुदेव को पुकारा। अभी तीसरी डुबकी भी नहीं लगी, मुझे ऐसा अनुभव हुआ कोई महात्मा मेरे पाँव को पकड़कर किनारे की ओर लिए जा रहे हैं। मैं आपकी इस दयालुता को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ। आपने ही आज मेरे जीवन की रक्षा की है।

एक बार एक व्यक्ति ने महाराज जी की सिद्धि की परीक्षा लेनी चाही। उसने अपने हाथ में एक रुपया रखकर मुठ्ठी बन्द कर ली और उनसे यह जानना चाहा कि इस मुठ्ठी में क्या है? महाराज जी ने उसे बहुत समझाया कि इस प्रकार महात्माओं की परीक्षा लेना उचित नहीं है। तुम्हारी कोई व्यक्तिगत समस्या हो तो उसमें मैं सहयोग दे सकता हूँ। परन्तु वह किसी प्रकार भी न माना और कहने लगा कि मैंने आपकी सिद्धि की बहुत प्रशंसा सुनी है। मैं उसे स्वयं प्रत्यक्ष रूप से देखना चाहता हूँ कि वास्तव में आपमें सिद्धि है या नहीं। जब वह व्यक्ति अपने दुराग्रह पर अड़ा ही रहा तो अन्त में महाराज जी ने कहा कि "तुम्हारी मुठ्ठी में जो कुछ भी है तुम्हारी त्वचा का रङ्ग भी वैसा ही हो जायेगा। मुठ्ठी खोलकर यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हथेली में रुपये के बराबर सफेद कोढ़ का दाग हो गया है। इसके लिए उसने बहुत उपचार किए परन्तु वह दूर नहीं हो सका।

एक बार महाराज जी एक स्त्री से मिलने गये जो उनकी परम

एक बार उनका एक शिष्य नर्मदा नदी में डूब गया। महाराज जी को जब यह दुखद समाचार दिया गया तो वे माथा और मुँह सब ढककर सो गये। लगातार तीन घण्टे तक वे इसी स्थिति में रहे और किसी से कुछ भी बोले नहीं। तीन घण्टे के बाद वह डूबा हुआ व्यक्ति महाराज जी के पास आ गया, चरण स्पर्श किए और अपनी गाथा इस प्रकार से वर्णन करने लगा।

मैं जब डूबने लगा तो नदी के जल का तीव्र प्रवाह मुझे बहुत दूर तक ले गया। चारों ओर अगाध जल राशि से भयभीत हो रहा था। मुझे अपने बचने का दूर २ तक कोई साधन भी प्रतीत नहीं हो पा रहा था। मुझे पक्का विश्वास हो चला था कि कुछ ही क्षणों में मेरी यह जीवन लीला समाप्त हो जायेगी क्योंकि यहाँ बस्ती से बहुत दूर मेरी सुरक्षा और सहायता करने वाला कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु ईश्वर की लीला न्यारी है। कुछ ही क्षणों में मैंने देखा कि एक तेजस्वी महात्मा मुझे बचाने के लिये आ गए हैं। मैं नहीं जानता कि वे कहाँ से और कैसे आए। इतना ही समझ में आता है कि वे अकस्मात जल में प्रकट हो गये और उन्होंने मुझे जल से निकालकर किनारे पर ला पटका। महाराज जी उस भक्त की आप बीती सुनकर हँसने लगे। जब वह चला गया तो धीरे से उन्होंने कहा अपने भक्तों की सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा लगता है कि महाराज जी जब माथा मुँह ढककर तीन घण्टे तक सोये थे तो उस समय वे सशरीर वहाँ पहुँच गये होंगे और भक्त को बचाने के बाद इसी शरीर में आ गये।

एक बार एक शिष्य के सम्बन्ध में भविष्य वाणी करते हुए कहा था कि यदि अमुक दिन वह नर्मदा के किनारे जायेगा तो निश्चय रूप से उसका अनिष्ट होगा। उस शिष्य को इस भविष्य वाणी का कोई विशेष ध्यान न रहा। अकस्मात उसी दिन नाव से उसका कुछ आवश्यक सामान आने वाला था। इसीलिए सामान लाने के लिए उसे

जा रही है। और नत्थेखाँ के लड़के के शरीर में उसका संचार होता जा रहा है। अघोरी का शरीर मुर्दा होगया और नत्थेखाँ के लड़के का शरीर जीवित हो गया। नत्थेखाँ के लड़के ने अघोरी के शरीर को कब्र में गाढ़ दिया और गाँव की परिक्रमा करके रेलवे स्टेशन को चल दिया। चार दिन के बाद नत्थेखाँ के लड़के को गाँव के एक सुनार ने हरिद्वार में देखा। यह परकाया प्रवेश की घटना सत्य है जिसे उस क्षेत्र के बहुत लोग जानते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति सम्पन्न---
गुप्त योगेश्वर उद्भड़ जी जोशी

गुप्त योगेश्वर उद्भड़ जी जोशी एक परम सिद्ध महापुरुष हो गये हैं। वे चान्दोई क्षेत्र के रहने वाले थे। उनका मूल नाम दयाशंकर गिरिजाशंकर जोशी था वे चोयार्यशी भट मेवाड़ी ब्राह्मण थे। गायत्री की परम साधना से उनकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो गई थी। इसके कारण उन्हें अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे सभी असम्भव कार्यों का सम्पादन कर सकते थे। उन्होंने अपने जीवन में ऐसे २ चमत्कार दिखाए जिन्हें देख और सुनकर दाँतों तले अँगुली दवानी पड़ती है। यदि बुद्धिवादी व्यक्ति उनकी समालोचना करने लगें तो इन चमत्कारी घटनाओं को असम्भव की ही संज्ञा देंगे। परन्तु जब वास्तविकता सामने आती है तो उन्हें मानना ही पड़ता है। विज्ञानवादी भले ही इससे सम्बन्धित सिद्धान्तों का विश्लेषण और खोज करते रहें और वे अन्धकार में ही भटकते रहें परन्तु जब प्रत्यक्षदर्शी उन घटनाओं की पुष्टि करते हैं तो उन्हें भी मन्त्र शक्ति का समर्थन करना ही पड़ता है। उनके चमत्कार की कुछ घटनाएँ इस प्रकार से हैं :—

मार दिया। गिरफ्तारी हुई, मुकदमा चला परन्तु उसका कुछ परिणाम न निकला क्योंकि चौधरी बैजनाथसिंह डाकुओं को कारतूस आदि सप्लाई किया करते थे। डाकुओं ने मृतक की पत्नी को इस प्रकार का बयान देने के लिये बाध्य किया कि उसने आत्महत्या की है। किसी ने उसको मारा नहीं है मुकदमा वहीं समाप्त हो गया और चौधरी छूट गये। गांव के लोगों ने अघोरी को इसकी सूचना दी कि चमार के साथ घोर अन्याय हुआ है। आप कुछ इसमें सहयोग दें। अघोरी ने संकल्प किया कि चौधरी बैजनाथसिंह कल तक जीवित नहीं रह पायेगा अघोरी ने अपना सिद्ध मारण प्रयोग चौधरी पर किया। घटना इस प्रकार से बताई जाती है कि उस रात्रि के लगभग एक बजे एक पैशाचिक शक्ति से प्रेरित मिट्टी की हँडिया चौधरी के मकान के चारों ओर चक्कर लगाने लगी। उस हँडिया पर एक दीपक जल रहा था। उस हँडिया में से किसी ने तीन बार चौधरी को जोर-जोर से पुकारा चौधरी उठे और दरवाजा खोलने के लिये आवाज दी। उनके आवाज देते ही मुँह से खून की उल्टियाँ होने लगीं। कुछ ही क्षणों में इतना खून शरीर से निकल गया मानों शरीर बेजान सा हो गया हो। खून तब तक न रुका जब तक कि चौधरी के प्राण पखेरू उड़ न गये। चमार की पत्नी को न्यायालय जो न्याय न दिला सका, वह न्याय अघोरी ने अपनी मंत्र शक्ति से दिला दिया।

३० मई सन् १९७० को नत्थेखाँ का एक लड़का सर्प के काटने से मर गया और कब्र में गाड़ दिया गया। कुछ लोगों ने देखा कि अघोरी ने नत्थेखाँ के लड़के की कब्र को खोदा। उसके मृत शरीर को बाहर निकाला और उसे स्वच्छ स्थान पर रख दिया। विशिष्ट मन्त्रों का उच्चारण करते हुए मृतक शरीर के चारों ओर कुछ रेखाएँ खींचीं। फिर उन्होंने अपने समस्त वस्त्र उतार दिए और लड़के के मृतक शरीर के पास ही लेट रहे। कुछ देर तक वे मन्त्रों का उच्चारण करते रहे। इससे ऐसा लगने लगा कि उनकी अपने शरीर की शक्ति क्षीण होती

उच्चारण किया। लोगों के देखते ही देखते एक सेव उनके हाथ में आया जिसे काटकर सभी को खिलाया गया। फिर उन्होंने और कई प्रकार के फल मँगाऐ। परन्तु परगनाधीश महोदय को इससे संतोष नहीं हुआ और बड़े गर्व से कहने लगे कि ऐसे चमत्कार दिखाते तो बहुत लोगों को देखा है। इस पर अघोरी जी क्रोधित हुए कि अब आपको मन्त्र शक्ति का ऐसा चमत्कार दिखाना पड़ेगा जिस पर आपको विश्वास करना ही होगा। लहर तहसील के खजाने में आपने रुपये जमा करवाए हैं और गिनवाकर सुरक्षित रूप से तालों में बन्द करके आए हैं। कुछ ऐसे कागजात हैं जिनपर आपने हस्ताक्षर भी किए हैं जिससे प्रतीत होता है कि आपने इन कागजातों को अच्छी तरह से देखा है। परगनाधीश महोदय को इससे कुछ संतोष और आश्चर्य हुआ कि इनको मेरी गतिविधियों की सूचना कैसे ज्ञात हो गई। अब अघोरी ने हाथों को पीछे किया। कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया। लोगों के देखते ही देखते कुछ ही क्षणों में तालों में बन्द तहसील में सुरक्षित रखे रुपयों की गड्डियाँ उनके हाथों में आने लगीं। परगनाधीश महोदय का लिखा हुआ वह इन्सपेक्शन नोट भी उनमें शामिल था। जो वे वहाँ रख आये थे। परगनाधीश सोच रहे थे कि वह कोई स्वप्न देख रहे हैं या नेत्र धोखा खा रहे हैं। परन्तु अपने हाथ के लिखे इन्सपेक्शन नोट और नोटों की गड्डियों को देखकर वे अस्वीकृत भी कैसे कर सकते थे। उन्हें मन्त्र शक्ति का चमत्कार मानना ही पड़ा। अघोरी ने मँगाई गई नोटों की गड्डियों को पुनः तहसील खजाने में भिजवा दिया।

अजीतपुरा से चार मील की दूरी पर रमपुरा गाँव के चौधरी बैजनाथसिंह ने एक चमार का १० बीघा खेत एक हजार रुपया देकर दखली रहन रखा था। कुछ समय के बाद वह चमार रुपया लेकर आया ताकि उसका खेत छोड़ दिया जाय। परन्तु चौधरी इसके लिये सहमत न हुए। जब वह चमार गाँव से लौट रहा था तो उसको गोली से

भाषाओं और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वचन सिद्धि, दिव्य दृष्टि और अन्य शरीर धारण करने की शक्ति भी विकसित की जा सकती है। इस शक्ति का प्रयोग जिस दिशा में किया जाय उधर सफलता ही सफलता के दर्शन होते हैं।

परकाया प्रवेश और मारण प्रयोग आदि की अलौकिक घटनाएँ

मध्यप्रदेश के भिण्ड जिले के अजीतपुरा ग्राम से तीन मील की दूरी पर पर्वतीय शिखर पर काली मन्दिर स्थित है। कहा जाता है कि यह देवी दस्यु मानसिंह, अमृतलाल, पञ्चमसिंह, लाखनसिंह और कल्ला आदि की इष्ट रही है और वे कई बार देवी की उपासना के लिये आए थे। इसके पुजारी एक सिद्ध पुरुष थे जो मन्त्र-तन्त्र की साधना में सिद्ध हस्त थे। तारा उनकी इष्ट थी। कहा जाता है कि कोई प्रेत उन्हें सिद्ध था जिसके सहयोग से वह अत्यन्त आश्चर्यजनक और अलौकिक कार्य करते थे। सर्प काटे के विष को उतारना, संकट ग्रस्तों की कठिनाइयों को दूर करना व सभी तरह के असम्भव कार्यों को सम्भव बना देना उनके लिये कोई कठिन कार्य नहीं था वे परकाया प्रवेश करने की भी सामर्थ्य रखते थे। उनका शरीरांत सन् १९७२ में हुआ था। उनके सम्बन्ध में अनेकों घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। जिनमें से कुछ यहाँ संक्षेप में वर्णित की जा रही हैं।

एक बार परगनाधीश महोदय उस ग्राम में आए। लोगों ने अघोरी अवधूत की सिद्धियों की बहुत प्रशंसा की और उन्हें उनके दर्शनार्थ काली मन्दिर ले गये। लोगों ने पुजारी जी को कुछ चमत्कार दिखाने के लिये अनुरोध किया। उन्होंने अपने हाथ पीछे करके कुछ मन्त्रों का

विघ्न नाश के सम्बन्ध में जो भी वरदान उन्होंने किसी को दिये वे सत्य ही सिद्ध हुए।

योग शास्त्र का भी उन्हें अगाध ज्ञान था। वैद्यक शास्त्र के तो वे पूर्ण पण्डित ही दिखाई देते थे। वे नक्षत्रों के साथ वनस्पतियों के घनिष्ठ सम्बन्ध से भली भांति परिचित थे। किस औषधि का किस देवता के लिये किस नक्षत्र में हवन किया जाना उपयुक्त है, इसकी उन्हें पूर्ण जानकारी थी। ज्योतिष विज्ञान की कभी उन्होंने नियमित शिक्षा प्राप्त नहीं की परन्तु किसी व्यक्ति की भी मुखाकृति को देखकर सरलता पूर्वक उसके भूत, भविष्य और वर्तमान की भविष्य वाणियाँ कर देते थे।

महाराज जी में अन्य शरीर धारण करने की भी शक्ति थी। वे दूसरे शरीर धारण करने की विद्या में दक्ष थे। इस क्रिया से उन्होंने कई बार अपने भक्तों की रक्षा की। एक बार तो किसी व्यक्ति के मन की गुप्त बातें जानने के लिए उसका शरीर धारण किया और ऐसी बातों का रहस्योद्घाटन किया जिनके सम्बंन्ध में उस व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई कुछ नही जानता था।

लोगों ने उनको लक्ष्मी सिद्ध भी अनुभव किया था। उनका कोई व्यवस्थित उद्योग धन्धा नहीं था। न ही कोई ऐसा सेठ साहूकार था जो उनको नियमित रूप से दान दक्षिणा देता रहता हो। न ही इसे वे स्वीकार करते थे। इस पर भी उनके खर्च को देखते हुए ऐसा लगता था कि जैसे उनको लाखों की दान दक्षिणा प्राप्त होती रहती है। क्योंकि प्रायः वे यज्ञ आदि ब्राह्मण भोजन कराते रहते थे, जिनमें खुले ढ़ंग से व्यय करते थे। इन खर्चों के लिए उन्होंने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। इन घटनाओं को देखकर यह मानना ही पड़ता है कि लक्ष्मी का उन पर परम अनुग्रह था।

श्री मुकुटराम जी महाराज की उपरोक्त घटनाओं से यह प्रतीत होता है कि विधि विधान से की गई गायत्री साधना से समस्त

थी। वे प्रातः काल ३-४ बजे उठ जाते थे और सायं ३-४ बजे तक निरन्तर जप करते रहते थे। उनके पुरश्चरण जीवन भर चलते ही रहे। इसी साधना से उन्हें अनेकों प्रकार की अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं।

मंत्र शास्त्र के वे परम ज्ञाता थे। वे भली भांति जानते थे कि कौन सा मंत्र किस प्रकृति वाले व्यक्ति के उपयुक्त रहेगा। उनकी शिक्षा नाम मात्र की ही थी। वे गुजराती की दो पुस्तकें ही पढ़ पाए परन्तु विश्व की सभी भाषाओं पर उनका एकाधिकार था। उन्हें कभी तैलगू भाषा में कभी कर्नाटकी में और कभी फारसी में बातचीत करते देखा गया। जब कोई व्यक्ति उनसे अंग्रेजी भाषा में बात करने का प्रयत्न करता तो उसका उत्तर उन्हें धारावाहिक रूप से अँग्रेजी में बात करते ही देखा जाता। जिस भाषा को उन्होंने कभी सुना तक न हो, उस भाषा का जानकार व्यक्ति उनसे सम्भाषण करने आये तो वे उससे अपनी मातृ भाषा की तरह ही बात करते थे। ऐसा लगता था मानों उन्होंने उस भाषा का पर्याप्त अभ्यास कर लिया हो। आध्यात्मिक भाषा में इस स्थिति को परावाणी पर अधिकार होना मानते हैं। वे पशु पक्षियों की भाषा को भी जानने की क्षमता रखते थे। कारण स्पष्ट है कि परावाणी में विश्व की सभी भाषायें मूल रूप से एक ही प्रतीत होती हैं।

महाराज जी की दिव्य दृष्टि बड़े गजब की थी। वे अपने स्थान पर बैठे ही विदेशों की ऐसी भविष्यवाणियाँ किया करते थे मानो वे स्पष्ट रूप से उन्हें अपने बाह्य नेत्रों से देख रहे हों। पिछले महायुद्ध में जर्मनी के एक बड़े स्टीमर के डूबने का समाचार पत्रों में प्रकाशित होने से पहले ही उन्होंने दे दिया था।

बचन सिद्धि के भी उनके अनेकों चमत्कार देखे गये थे। वे जिस व्यक्ति को जो भी आशीर्वाद देते वे कभी असत्य नहीं हुए। वर्षा बन्द होने, संतान की उत्पत्ति, ऐश्वर्य की वृद्धि, रोग निवृत्ति, सर्प

मन्त्रशक्ति के अद्भुत चमत्कार

विश्व की समस्त भाषाओं पर एकाधिकार

श्री पं० जगन्नाथ जी भाई ने गुजराती भाषा में "मुकुट लीलामृत" नाम की एक सुन्दर पुस्तक की रचना की है जिसमें मुकुटरामजी महाराज की चमत्कारी गायत्री सिद्धियों का उल्लेख मिलता है। वे बड़ौदा के निकट भंजुसर के निवासी थे। गायत्री की वर्षों तक उत्कृष्ट साधना करने के फलस्वरूप उनकी सूक्ष्म शक्तियाँ जागृत हो गई थीं। उनकी शक्तियों की गाथा सुनने से ऐसा लगता है कि वे शक्ति सम्राट के रूप में परिणित हो गये थे। पढ़े लिखे तो वे बहुत कम थे परन्तु उनसे बातचीत करने पर ऐसा लगता था कि वे सभी विषयों में पारंगत हैं। उनके ज्ञान का आन्तरिक स्रोत खुल सा गया था। उनका जीवन इस सिद्धान्त को प्रमाणित करता है कि मनुष्य में सभी भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान की पूर्ण जानकारी विद्यमान है। केवल उसे उद्दीप्त और जागृत करने की ही आवश्यकता रहती है।

श्री मुकुटरामजी की सिद्धियों का श्रेय उनकी तपोसाधना को ही है। वे प्रातः काल एक आसन पर बैठकर छः घण्टे गायत्री का जप किया करते थे। चैत्र मास में तो उनकी साधना और लम्बी चलती

बाबा कीनाराम की चमत्कारी सिद्धियाँ

लगभग २०० वर्ष पहले काशी में बाबा कीनाराम नाम के एक सिद्ध तांत्रिक अघोरी निवास करते थे। जिनकी सिद्धियों की अनेकों घटनाएँ आज भी लोक प्रसिद्ध हैं। कुछ तो ऐतिहासिक महत्व की हैं। कुछ अलौकिक घटनाओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

बाबा एक गाँव से जा रहे थे। उस गाँव के जमींदार का यह नियम था कि जो व्यक्ति जमींदारी समय पर जमा नहीं कर सकता, उसे वे लगातार कोड़े मरवाने का दण्ड देते थे जब तक कि उसके शरीर का अन्त न हो जाय। बाबा ने उस गाँव की एक वृद्धा स्त्री को रोते चिल्लाते हुए देखा। कारण पूछने पर पता चला कि सूखे के कारण उसका लड़का जमींदारी जमा नहीं कर पाया है। उसके शरीर पर भी आज कोड़े पड़ेंगे और उसका एक मात्र सहारा टूट जायेगा। बाबा ने वृद्धा को आश्वासन दिया। बाबा जमींदार के पास गये और उस लड़के को क्षमा करने का अनुरोध किया परन्तु धन के मद से फूला जमींदार एक साधु की बात कब मानने वाला था। वह न माना। बाबा एक पेड़ के नीचे बैठकर मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। जब लड़के को कोड़े मारे जाने लगे तो वहाँ उपस्थित लोगों ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि कोड़े मारे तो उस लड़के को जा रहे हैं परन्तु उनका प्रभाव जमींदार की पीठ पर पड़ रहा है। जमीदार चिल्लाया और कोड़े रोकने का आदेश दिया परन्तु रोकते-रोकते भी तीन कोड़े लड़के को मार ही दिये गये जमींदार की पीठ पर तीन कोड़ों के निशान देखे गये। जमींदार ने उस लड़के को छोड़ दिया और बाबा से क्षमा माँगी।

एक बार बाबा जूनागढ़ गये। वहाँ के नवाब के कानून के अनुसार कोई भी साधु वहाँ भिक्षा नहीं माँग सकता था। बाबा को इस

कानून की सूचना नहीं थी। वे नगर में भिक्षाटन करने लगे तो पुलिस ने उन्हें पकड़कर कारागार में डाल दिया। वहाँ और भी बहुत से साधु जेल की यातनाएँ सह रहे थे जिनसे चक्की पिसवाई जाती थी। बाबा से भी पिसवाने के लिए कहा गया परन्तु वे इसके लिए सहमत न हुए। पुलिस इन्सपेक्टर ने उन्हें एक लात मारी परन्तु आश्चर्य बाबा को मारी गई लात बाबा को न लगकर पत्थर की चक्की को लगी। इन्स-पेक्टर को चोट आई। इसके पश्चात कारागार की सभी चक्कियाँ स्वयमेव चलने लगीं और आटा पिस-पिसकर आने लगा, कोई भी साधु उन चक्कियों को स्पर्श तक नहीं कर रहा था। नबाव को जब यह पता चला तो वे जेल में स्वयं आये और इस चमत्कार को अपनी आँखों से देखा। वे बाबा के पैरों पड़ने लगे और उस काले कानून को समाप्त करने का आदेश दिया।

वाराणसी के ईश्वर गंगी-मौहल्ले में एक परम वैष्णव लोटा बाबा निवास करते थे। हर वर्ष एक बड़ा भण्डार आयोजित करने का उनका नियम था जिससे हजारों साधुओं को निमन्त्रित करके स्वादिष्ट पकवान खिलाते और पीतल का लोटा दक्षिणा में देते थे। बाबा कीना-राम भी वाराणसी में ही रहते थे परन्तु लोटा बाबा ने उन्हें अपने भण्डारे में कभी निमन्त्रित नहीं किया। एक बार भण्डारा चल रहा था। बाबा स्वयं ही भण्डारे के निकट एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गये, निमन्त्रित अतिथियों को पत्तलों पर सभी प्रकार के बनाये गये व्यंजन परोस दिए गये और साधु समाज की सामूहिक कीर्तन ध्वनि से आकाश गूँजने लगा। कीर्तन के बाद साधु वर्ग भोजन आरम्भ करना ही चाहता था। परन्तु सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सभी साधुओं के हाथ काठ से हो गये हैं। बाबा अघोरी तो थे ही पत्तलों पर मिठाई और पकवान के स्थान पर माँस और मछली देखे गये और जल के स्थान पर कुल्हड़ों में शराब। भण्डारे की सारी सामग्री भ्रष्ट हो चुकी थी। लोटा बाबा अत्यन्त चिंतित हुए। एक साधु ने उन्हें

सूचना दी कि बाबा कीनाराम निकट ही पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हुए हैं। आपने उन्हें निमन्त्रित न करके जो अपमान किया है, उसी से वे क्रोधित हैं और यह भोज्य सामग्री का भ्रष्ट होना उन्हीं के क्रोध का परिणाम है। कुछ साधु बाबा के पास गये और भण्डारे में सम्मिलित होने का अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने कहा कि जब तक लोटा बाबा स्वयं निमंत्रित न करें तब तक वहाँ जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। लोटा बाबा स्वयं आए और बाबा कीनाराम से क्षमा माँगने लगे। बाबा भण्डारे में गये, जो भोज्य सामग्री माँस, मछली और शराब में परिवर्तित हो गई थी वह पुनः मिष्ठान और पकवान के रूप में पूर्ववत् हो गई और समस्त साधु वर्ग ने प्रेम-पूर्वक भोजन किया।

एकबार बाबा कीनाराम और सन्त कालूराम दोनों एक साथ गंगा किनारे जा रहे थे। सन्त कालूराम ने गङ्गा में बहती किसी वस्तु की ओर संकेत करते हुए कहा "देखो किसी का मृतक शरीर बहता आ रहा है।" बाबा कीनाराम ने तुरन्त उत्तर दिया "यह मृतक नहीं जीवित है।" इस पर सन्त कालूराम ने उस तथाकथित जीवित को बुलाने का अनुरोध किया। बाबा ने दूर से आवाज दी इधर आओ। आश्चर्य कि मृतक शरीर में प्राणों का संचार हो गया और वह मृतक उठकर खड़ा हो गया। बाबा ने पुनः उसे घर जाने का आदेश दिया तो वह अपने घर की ओर पग बढ़ाने लगा। मृतक से जीवित होने के इस चमत्कार का श्रेय बाबा की मन्त्र साधना को ही है।

बाबा के समय महाराज चेतसिंह काशी में राज्य करते थे। उन्होंने शिवाला घाट महल में एक शिव मन्दिर की स्थापना की योजना बनाई। जिस दिन शिव-लिंग की प्राण प्रतिष्ठा हो रही थी, महाराज ने चौकीदारों को सचेत कर दिया था कि आज अघोरी बाबा कीनाराम किसी प्रकार भी पूजा समारोह में सम्मिलित न हो पायें। बाबा के आश्रम का फाटक महाराज के महल के सामने ही था। चेतसिंह के पिता

महाराज बलवंतसिंह बाबा का बड़ा सम्मान करते थे और बाबा बिना रोक टोकके आया जाया करते थे आजभी बाबा पूजा समारोह को देखने के लिये स्वयमेव आ गये। उन्हें रोकने का साहस राजदरबार के किसी भी अधिकारी को न था। चेतसिंह ने जब बाबा को देखा तो वह पूजा के आसन पर बैठे हुए भी लाल पीले हो गये। और तरह २ की गाली देते हुए, सिपाहियों को उन्हें ठोकर मारकर बाहर निकाल देने का आदेश दिया। सिपाहियों में से तो किसी को इतना साहस नहीं था कि बाबा से इस प्रकार दुर्व्यवहार करें। इससे पहले कि चेतसिंह अपने आदेश को दुहराएँ बाबा ने उन्हें शाप दिया कि तेरे वंश में कोई भी तेरी आज्ञा पालन करने वाला उत्पन्न न होगा। तुम्हें कभी भी पुत्र प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त न होगा। बाबाने पुनः हाथ ऊपर उठाकरकहा'यह मन्दिर भी तुम्हारे अधिकार में नहीं रहेगा यह विधर्मियों के स्वामित्व में रहेगा यहाँ कौए बीट करते दिखाई देंगे।' लोगोंने देखा कि बाबाका यह शाप सत्य सिद्ध हुआ। चेतसिंह के यहाँ उसके बाद कोई लड़का न हुआ उसके सभी पुत्रियाँ ही उत्पन्न हुईं। चेतसिंह का ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ युद्ध हुआ, वे पराजित हुए और गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने महल पर अपना नियंत्रण कर लिया। अँग्रेजों के कब्जे में होने के कारण वहाँ मन्दिर की पूजा का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। मन्दिर में अँग्रेज बूटों सहित आने जाने लगे। कुछ वर्ष बाद तो वह जगह उजाड़ सी हो गई। वहाँ पर चमगादड़ और कौए बीट करते दिखाई दिए।

एक बार शाम को बाबा गङ्गा किनारे घूम रहे थे। जब वह शिवाला महल के नीचे पहुँचे तो अकस्मात चेतसिंह भी घूम रहे थे। दोनों के मिलन से जैसे कुछ आंतरिक विस्फोट सा हुआ हो। बाबा ने पिछली बातों को भूलते हुए हँसी में राजा से निवेदन किया कि इस समय भूख लगी है कुछ खाने के लिए मँगावें तो बड़ी कृपा होगी। चेतसिंह मन्दिर में हुए व्यवहार का बदला लेने का अवसर देख ही रहे

थे। उन्होंने अपने मन्त्री को आदेश दिया कि किले के पश्चिम कोने पर गङ्गा जी में एक मृतक शरीर रुका हुआ है जिसमें सड़ाँध आने लगी है। डोमड़ों से उसे उठवाकर यहाँ मँगवा लो। मन्त्री सदानन्द का इतना दुःसाहस नहीं था कि बाबा का इस प्रकार अपमान करें। उन्होंने राजाज्ञा का उल्लंघन करते हुए स्पष्ट कहा कि मुझे फाँसी भले ही आप चढ़ा दें परन्तु इस प्रकार का घृणित कार्य करने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ। चेतसिंह के क्रोध से पहले ही बाबा ने आदेश का पालन करने का अनुरोध किया। थोड़ी ही देर में मुर्दा आ गया। बाबा पालथी मारकर बैठ गये। चेतसिंह ने व्यङ्ग से भोग लगाने का आग्रह किया बाबा ने अपना दुपट्टा मृतक पर डाल दिया। पाँच मिनट तक उन्होंने मौन धारण किया और कुछ मन्त्रों का उच्चारण करते रहे। उसके बाद उन्होंने दुपट्टा हटाने का आदेश दिया। सब लोगों ने आश्चर्य से देखा कि मृतक शरीर के स्थान पर वहाँ पर विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ और पकवान रखे हुए थे। इस चमत्कार से राजा प्रभावित हुए और बाबा से क्षमा याचना करने लगे। परन्तु बाबा ने कहा " अब तुम राजा नहीं रह पाओगे। इतिहास साक्षी है अँग्रेजों से युद्ध में चेतसिंह पराजित्त हुए और ग्वालियर की ओर भाग गये। इसके बाद कभी नहीं लौटे। चेतसिंह ने बाबा का ही नहीं मन्त्र शक्ति का भी अपमान किया था। उसका दुष्परिणाम उसने अपने जीवन में ही देख लिया।

—★—

जल को घृत में परिणित करने वाले--महात्मा खाँडे राव जी

जब किसी क्रिया से कोई असम्भव कार्य सम्भव होने लगता है तो उसे ही चमत्कार की संज्ञा दी जाती है, जल और घृत दोनों तरल

पदार्थ हैं, और दोनों के गुणों में बहुत अन्तर है। भौतिक विज्ञान की किसी भी क्रिया से जल को घृत में परिवर्तित करना, किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। और न ही भविष्य में ऐसी आशा की जा सकती है। परन्तु मन्त्र शक्ति के अद्भुत प्रभाव की एक सत्य घटना इस आशय की मिलती है कि एक महात्मा ने आवश्यकता पड़ने पर जल को घृत के रूप में प्रयुक्त किया। घटना इस प्रकार से है :—

जिला कानपुर में बिठूर नाम का एक कस्बा है। उसके निकट पटकापुर ग्राम में एक निष्ठावान ब्राह्मण खांडेराव जी ने अपनी कुटिया बना रखी थी। वहीं पर वे गायत्री साधना में रत रहते थे, उन्होंने चौबीस लक्ष गायत्री जप का महा- अनुष्ठान किया, इस अनुष्ठान की पूर्णाहुति के रूप में एक ब्रह्म-भोज का आयोजन किया। हजारों ब्राह्मण इसमें सम्मिलित हुए, दिनभर भोज होता रहा, परन्तु कुछ लोग शेष रह गये थे। इसलिए रात्रि तक यह कार्य चलता रहा। रात के नौ बजे प्रबन्धक ने श्री खाँडेराव जी को बताया कि घी बिलकुल समाप्त हो चुका है। ऐसा अनुमान है कि अभी चार कनस्तर घी की और आवश्यकता पड़ेगी रात को इतने घी की व्यवस्था करना एक उलझन भरी समस्या थी इनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। कुछ समय ध्यान मग्न रहकर उन्होंने प्रबन्धक को आज्ञा दी कि गंगा जी में से चार कनस्तर गङ्गाजल भर लाया जाये और इसे घी के स्थान पर प्रयुक्त किया जाये। लोगों को उनकी बात पर सहसा विश्वास नहीं हुआ और जब उन्होंने बार-बार आग्रह किया तो चार व्यक्ति चार कनस्तर गङ्गाजल ले आये, उससे पूड़ियां सेकी गईं। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि ऐसा स्वादिष्ट पकवान उन्होंने जीवन भर में कभी नहीं खाया। दूसरे दिन चार कनस्तर घी मंगवाकर गङ्गा जी में डलवा दिया गया। पूछने पर श्री खांडेराव जी ने बताया कि गङ्गाजी से चार कनस्तर घी मैंने उधार लिया था, वही आज वापिस कर दिया। गायत्री मन्त्र

की शक्ति का अद्भुत प्रभाव पंडित रूपलाल शर्मा और उनके कई मित्रों ने स्वयं देखा।

—★—

मिट्टी का शक्कर में परिवर्तन

कुछ वर्ष पूर्व नई दिल्ली के बिड़ला मन्दिर में एक स्वामी जी ने मन्त्र शक्ति का एक सार्वजनिक प्रदर्शन किया था और हजारों की भीड़ के समक्ष यह सिद्ध किया था कि मन्त्र शक्ति से पदार्थों और उनके गुणों में भी परिवर्तन किया जा सकता है। वहाँ काफी संख्या में पढ़े लिखे व्यक्ति उपस्थित थे। उनके सामने उन्होंने एक मिट्टी की ईंट को शक्कर की ईंट बना दिया और उसके टुकड़े कुछ लोगों को काट काट कर खिलाये गये तो उसमें शक्कर की मिठास थी। मन्त्र शक्ति का यह अनोखा चमत्कार था। प्रश्न यह नहीं कि वैज्ञानिक उपकरणों की अपेक्षा मन्त्र शक्ति से कम से कम मूल्य की वस्तु का निर्माण हुआ परन्तु विचार यह करना है कि उससे पदार्थ और गुण में परिवर्तन सम्भव हो पाया है।

—★—

हिंसक पशुओं को अहिंसक बनाने और परकाया प्रवेश की क्षमता वाले--सिद्ध हरिहर बाबा

लगभग ६० वर्ष पहले की बात है, राम टेकरी के नीचे लगभग ७००० एकड़ का एक घना जङ्गल था। उसी जङ्गल के दक्षिण पार्श्वमें एक वट वृक्ष के नीचे महात्मा हरिहरजी ने एक गुफा बना रखी थी

वहीं वे गायत्री जप की साधना करते थे। इसी से उनको अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं।

उनके निकट सम्पर्क में आने वालों ने बताया था कि अनेकों नेत्रहीनों को उन्होंने देखने की सामर्थ्य दी थी। एक कोढ़ी को उन्होंने आरोग्य प्रदान किया था।

वे पर काया प्रवेश की भी क्षमता रखते थे। एक बार की घटना है कि एक अनधिकारी साधु उनका शिष्य बनने के लिये आया। अभी वह गुफा के निकट पहुँचा भी नहीं था कि उसने गुफा से एक विकराल दाँतों वाले सुअर को निकलते देखा जो साधु का पीछा करने लगा और उस जङ्गल के बाहर उसे खदेड़ दिया। सुअर से साधु के रूप में परिवर्तित होकर हरिहर बाबा ने उस साधु को उधर कभी न आने की चेतावनी दी।

कहते हैं कि उस गुफा के आस पास कई मील तक जल का कोई स्रोत नहीं था परन्तु हरिहर बाबा के घड़े में सदैव शीतल जल भरा रहता था। जिससे वे पशुओं तक की प्यास बुझा देते थे।

गुफा के निकट चीते, बघेरे, भेड़िये और जङ्गली सुअर आदि अनेकों प्रकार के हिंसक पशु निवास करते थे। परन्तु हरिहर बाबा को कभी किसी ने भी अपनी हिंसक वृत्ति का शिकार बनाने का प्रयत्न नहीं किया। वे सभी पशु उनसे प्रेम करते थे और गुफा में आने वाले भक्तों को हानि नहीं पहुंचाते थे। एक बार की घटना है एक अहीर बाबा के दर्शनार्थ गुफा की ओर जा रहा था। मार्ग में अकस्मात एक बाघ सामने आ गया। अहीर भयभीत नहीं हुआ। उसने दोनों हाथ जोड़कर बाघ से निवेदन किया कि मैं बाबाके दर्शन करने जा रहा हूँ। बाघ चुपचाप एक ओर चल दिया।

यह घटना सत्य है। अनेकों सिद्ध महात्माओं के आश्रमों में शेर और गाय को एक साथ निवास करते देखा गया है। महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती ने भी अपनी पुस्तकों में अनेकों ऐसे सिद्ध

महात्माओं का वर्णन किया है जहाँ विरोधी स्वभाव के पशु एक साथ रहते थे। महर्षि रमण का आश्रम तो इस विशेषता के लिए प्रसिद्ध था ही जहाँ सभी प्रकार के हिंसक और अहिंसक पशुओं को एक साथ रहते देखा गया था।

—★—

यौगिक सिद्धियाँ और अनुभूतियाँ

हटा के श्रीरमेशचन्द्र दुबे ने गायत्री मन्त्र के जाप की कुछ ऐसी अनुभूतियों का वर्णन किया है जैसी कि योग साधना से प्राप्त होती हैं। इसीलिए कुछ विज्ञ जनों ने कहा भी है कि गायत्री जप साधना स्वयं एक योग है। यदि उससे योग जैसी अनुभूतियाँ होती हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

श्रीदुबे अपनी कुटिया में गायत्री साधना किया करते थे। एक दिन जप करते हुए उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि दक्षिण से कोई व्यक्ति सितार बजाता हुआ दूर से आ रहा है। उसकी मधुर ध्वनि से मेरा रोम-२ प्रफुल्लित और आनन्दित हो रहा है। मेरा मन चाहता था कि मैं सदैव के लिए इस जप साधना पर बैठा रहूँ, सितार बजती रहे और मैं सुनता रहूँ। ऐसी मधुर ध्वनि मैंने आज तक कभी नहीं सुनी। वह ध्वनि स्थिर न रह पाई और मेरे देखते ही देखते न चाहते हुए भी वह सितार बजाने वाला व्यक्ति उत्तर की ओर प्रस्थान कर गया। मेरी इच्छा हुई कि उसे उठकर देखूँ किन्तु शरीर जड़वत सा हो चला था, उठ न सका। जब सितार की आवाज बहुत दूर चली गई तो उठकर देखा परन्तु अब वहाँ कुछ नहीं था।

उन्हें और भी ऐसी कई अनुभूतियाँ हुई। कभी अपने चारों ओर सिद्ध महात्मा देखते और उनके दिव्य आवेश और आदेश सुनते।

कभी विघ्न उपस्थित करने वाले दृश्य भी दिखाई देते जैसे दूषित हाव-भाव से युक्त सुन्दर स्त्रियों का दिखाई देना और हिंसक पशुओं का आक्रमण और शरीर का सर्पों द्वारा लपेटा जाना। जिस साधक को उच्च सफलता प्राप्त होने लगती है, उसकी साधना में ऐसे विघ्न आते ही हैं। भगवान बुद्ध ने जब लोधि वृक्ष के नीचे तपस्या की थी तब आसुरी शक्तियों ने उनके साधना मार्ग में भी ऐसे ही विघ्न उपस्थित किये थे।

श्री दुवे को गायत्री साधना से इतनी शक्ति प्राप्त हो गई थी कि विच्छू और सर्प के काटे व उन्माद आदि विभिन्न प्रकार से पीड़ित रोगियों को स्वस्थ कर देते थे। वस्तुओं को पारदर्शक देखने की शक्ति भी उनमें थी। यह सब गायत्री मन्त्र की साधना से ही उन्हें प्राप्त हुआ था।

प्राणरक्षा की अद्भुत घटनाएँ

लायलपुर से दो मील उत्तर में एक वन में एक गायत्री सिद्ध महात्मा निवास करते थे। जो एक समय शाम को नगर में आकर भिक्षाटन करते और शेष सारा दिन गायत्री मन्त्र के जाप में संलग्न रहते। भिक्षा के लिए उन्होंने कुछ ही घरों को चुन रखा था। उनमें से एक भक्त विष्णुदयाल का घर था जिनके एक सात वर्ष के बालक को महात्मा जी से बहुत स्नेह हो गया था। महात्मा जी भी उस पर कृपा दृष्टि रखते थे। वे जब इनके घर आते तो इस बालक के साथ कुछ समय तक अवश्य बातचीत करते।

कुछ समय बाद एक संक्षिप्त बीमारी से ही बालक का शरीरांत हो गया। सम्बन्धी बालक के शरीर को जब श्मशान की ओर ले

जा रहे थे उसी समय वे महात्मा जी भी भिक्षा के लिए आए। बालक की मृत्यु से उन्हें भी दुःख हुआ और बालक के सम्बन्धियों के साथ श्मशान तक गये। जब लोग श्मशान पहुँचे तो महात्मा जी ने उनसे कहा कि मृतक को तुम मुझे सौंप दो और तुम अपने २ घर जाओ। सभी लोगों की उन महात्मा पर अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने मृतक बालक के शरीर को महात्मा जी को सौंपा और घर लौट गये।

महात्मा जी ने रात भर बालक के जीवित होने के लिये भगवान से प्रार्थना की परन्तु उसका कुछ भी अनुकूल परिणाम न दिखाई दिया। प्रातः होते ही उन्हें अपनी असफलता पर खीझ हुई और चिल्लाकर बलपूर्वक कहा "ईश्वर की इच्छा से नहीं तो उठ मेरी इच्छा से जी पड़।" बालक के शरीर में प्राणों का संचार हो गया और वह वास्तव में जीवित हो गया। उन्होंने एक दिन बालक को अपनी कुटिया में रखा और दूसरे दिन घर वालों को सौंप दिया।

यह घटना लगभग १०५ वर्ष पुरानी है। और बिलकुल सत्य है।

(२)

रघु नाम का एक केवट श्री जगन्नाथ पुरी से दस कोस की दूरी पर पिपली चटी नाम के एक गाँव में निवास करता था। मछली पकड़-पकड़ कर बाजार में बेचना ही उसके जीवन निर्वाह का साधन था। वैसे तो पापी व्यक्ति जिस पाप में लिप्त रहता है, वह पाप उसे पाप ही दिखाई नहीं पड़ता। जब कोई सन्त पुरुष उसे छोड़ने की प्रेरणा देता है तो वह उस पाप के ही पक्ष में तरह-तरह के तर्क देने का प्रयत्न करता है। रघु केवट का ऐसा स्वभाव नहीं था। दुर्भाग्य से उसका जन्म ही ऐसे परिवार में हुआ जहाँ अन्य जीवों की हत्या करके ही पेट की क्षुधा बुझाई जा सकती थी। रघु के पूर्व संस्कार जागृत हो गये। उसे विवेक दृष्टि मिली। वह मछलियाँ पकड़कर अपने परिवार का पालन पोषण तो करता ही था, क्योंकि इसके अतिरिक्त

और कोई चारा भी उसे दिखाई नहीं दे रहा था। पढ़ा लिखा वह था नहीं। धनाभाव के कारण कोई व्यापार भी वह नहीं कर सकता था। उसका इतना बौद्धिक विकाश भी नहीं हो पाया था कि किसी और माध्यम से धनोपार्जन कर पाता। इतना भी विवेक उसे प्राप्त हुआ कि मछलियाँ पकड़ने के पेशे से उसे घृणा सी हो गई। वह बार-बार भगवान से प्रार्थना करता था कि जीव हत्या करके जीवन निर्वाह करने के इस पेशे को किसी तरह छुड़ाये। परन्तु विवश था। कुछ कर नहीं सकता था।

इस पापपूर्ण पेशे के प्रति धीरे-धीरे उसकी घृणा बढ़ती गई और उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा। एक दिन एक सुयोग्य गुरु से विष्णु मन्त्र की दीक्षा लेकर वह नियमित रूप से मन्त्र जाप करने लगा। धीरे-धीरे उसकी मन्त्र-साधना बढ़ती चली गई और वह एक उच्च कोटि का साधक बन गया। अब उसने मछलियाँ पकड़ना भी छोड़ दिया। उसके परिवार का पालन-पोषण भी किसी प्रकार से हो ही जाता था। उसकी आत्मिक स्थिति में असाधारण परिवर्तन हुआ। वह साम्य अवस्था को प्राप्त हो चुका था। ऐसा लगता है जैसे जड़ भगत जैसी स्थिति उसे प्राप्त हो गई हो। दुःख-सुख की उसकी अनुभूतियाँ समान थीं। इस उच्चतम आत्मिक स्थिति से लोग उसे पागल समझने लगे। वे दिन रात इष्टदेव के मन्त्र जप और कीर्तन में ही लीन रहता।

गाँव के कुछ दुष्ट लड़के उसे छेड़ते, गालियाँ देते और तरह-तरह से उसे तङ्ग करके प्रसन्नता का अनुभव करते थे। परन्तु रघु उन्हें कोई उत्तर न देते। लड़कों का साहस बढ़ता गया। कुछ लड़के उसे डण्डे भी मारने लगे। एक दिन एक दुष्ट लड़के ने एक काटों वाला डण्डा रघु की पीठ पर जोर से मारा। जब इसका विरोध नहीं हुआ तो उस लड़के ने उस काँटों वाले डण्डे से कई बार प्रहार किया। रघु के

शरीर से खून बहने लगा। असहनीय पीड़ा होने लगी परन्तु रघु ने उस लड़के को कुछ भी नहीं कहा और अपने मार्ग पर आगे बढ़ता चला गया। कुछ ही क्षणों में उसने आश्चर्य से देखा कि वह लड़का मूर्छित होकर गिर पड़ा और गिरते ही उसका प्राणांत हो गया उसके घर सूचना दी गई। उसके माता पिता दौड़े आये। लोगों ने परामर्श दिया कि रघु केवट को पीड़ित करने के कारण यह दण्ड इसे मिला है। यदि रघु इसे क्षमा कर दे तो इसके जीने की सम्भावना हो सकती है। सभी गाँव के लोग रघु के पास गये। उसे लड़के को क्षमा करने और प्राण-दान देने की प्रार्थना की। रघु को अभी तक इस बात की जानकारी नहीं थी उसको डण्डे मारने वाला लड़का मर चुका है। उसने कहा कि यदि मेरे कारण से उस लड़के को दण्ड मिला है तो मैं सहर्ष अपने प्रभु से उसके जीवित होने की प्रार्थना करूँगा। लोगों ने लड़के की नाक के पास रुई रखकर भली प्रकार देख लिया था कि उसका श्वास अब बिल्कुल नहीं चल रहा है। रघु ने लड़के के जीवित होने के लिए प्रार्थना आरम्भ की। सभी लोग सामूहिक रूप से कीर्तन करने लगे। रघु का मानसिक मन्त्र जाप बराबर चल रहा था। रघु भी प्रेमावेश में पागलों की तरह मृत बालक के चारों तरफ घूमकर कीर्तन करते हुए नाचने लगा प्रभु ने भक्त की पुकार सुनी। कुछ ही देर के बाद नींद से उठने की तरह अपने अङ्गों को मरोड़ता हुआ उठ बैठा। बालक के शरीर में पुनः प्राणों के संचार को देखकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और रघु केवट की जय-जयकार करने लगे। उस बालक का स्वभाव अब परिवर्तित हो चुका था। वह भी अब कीर्तन करने लगा। उसने रघु से बार-२ क्षमा माँगी और भविष्य में ऐसा कुकृत्य न करने का दृढ़ संकल्प किया।

(३)

लाहौर के दैनिक मिलाप के संस्थापक मालिक और स्वामी श्रीखुशलालचन्द (आनन्द स्वामी सरस्वती) के सुपुत्र रणवीर पर

अँग्रेजी सरकार ने यह अभियोग लगाया था कि लाहौर के विश्व-विद्यालय हाल में पंजाब के गवर्नर पर गोली चलाने की योजना में जो चार नवयुवक पकड़े गये थे, उनमें से एक रणवीर जी थे। वे जेल गये, मुकदमा चला और सेशन जज ने फाँसी के दण्ड की आज्ञा सुना दी और कोई मार्ग न देखकर खुशहालचन्द जी ने रणवीर को जेल में गायत्री मन्त्र के जाप की प्रेरणा दी। अभियोग प्रमाणित होगया था और फाँसी का दण्ड भी सुनाया जा चुका था। शासन पर किसी प्रभाव-शाली व्यक्ति के प्रभाव का भी प्रयोग नहीं किया गया, केवल मात्र रणवीर का सहारा गायत्री मन्त्र की शक्ति थी जो बुद्धि को परिवर्तित, परिमार्जित, शोधित और एक नया मोड़ लाने की क्षमता रखती है। उस शक्ति ने ही शासक वर्ग की बुद्धि में ऐसा चमत्कारी परिवर्तन किया कि उन्होंने रणवीर के अपराध को क्षमा कर दिया। वे फाँसी के दण्ड से मुक्त हो गये। गायत्री मन्त्र का नामकरण भी इसी आधार पर किया गया है कि वह गाय अर्थात् प्राणों की सुरक्षा करती है। रक्षा की दृष्टि से गायत्री एक अद्भुत चमत्कारी शक्ति है।

(४)

लगभग तीस वर्ष पहले की बात है, राजगढ़ (मध्यप्रदेश) के बागरया खेड़ी ग्राम के निवासी ठाकुर शिवनाथसिंह को मोतीझला का बुखार हुआ। तापक्रम १०२ रहने लगा। अनेकों प्रकार की दवाएँ ली गईं। परन्तु किसी का भी कुछ प्रभाव न हुआ और रोग दिन-दिन भयंकर रूप लेने लगा। किसी को बचने की आशा न रही तो उन्होंने स्वयं रामचरितमानस के उत्तर काण्ड का पाठ सुनने की इच्छा व्यक्त की। इतने में उन्होंने देखा कि श्याम रङ्ग के दो ओजस्वी युवक दस-पन्द्रह गज की दूरी पर खड़े हैं। उनकी घबराहट बढ़ी। यमदूतों से बचाने के लिए उन्होंने जोर-२ से चिल्लाना शुरू किया, परन्तु पास बैठे व्यक्तियों में से किसी ने उनको नहीं देखा। उनकी डरावनी आकृति से वे भयभीत हो रहे थे और शरीर काँपने लगा था। उनसे बचने के

लिए वे राम नाम का स्मरण करने लगे। राम नाम के उच्चारण से यमदूत पीछे हट गये और रामचरितमानस का पाठ होने लगा। जब भी यमदूत उन्हें दिखाई देते, वे जोर-जोर से राम नाम का उच्चारण करने लगते। राम नाम सुनकर यमदूत भाग जाते। रात्रि में उन्हें कुछ झपकी सी आ गई और रामचरितमानस का पाठ भी बन्द हो गया था। यमदूतों ने मौका देखा और उनकी छाती पर चढ़ गये। इतने में वह अचेत हो गये। लोगों ने समझ लिया कि उनका प्राणान्त हो गया है। इस शरीर के छूटने पर वे तीतर की योनि में गये। तीतर वन में उड़कर गया। वहाँ पर साँसी जाति की एक वृद्धा ने उसे पकड़ा। जब उसे भूख लगी तो तीतर के पंख नौंचे और जलती अग्नि में भूनकर खाने लगी। उनकी तीतर की योनि समाप्त हुई और उनकी जीवात्मा पुनः कम्बल में ढँके शरीर में आ पहुँची जहाँ उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की तैयारियाँ हो रही थीं। यह घटना चक्र आध घण्टे में ही सम्पन्न हो गया। उनकी अर्थी का प्रस्थान होने वाला था कि उनके मुख से अकस्मात राम नाम निकल पड़ा। उनके भाई ने सुना तो कम्बल हटाया गया। उनकी आँखें खुली थीं और वे राम नाम का जोर-२ से उच्चारण कर रहे थे।

वे पूर्ण स्वस्थ हो गये और तेईस वर्षों के बाद त्रेपन वर्ष की आयु में उन्हें स्वस्थ देखा गया।

ठाकुर साहब का दृढ़ विश्वास है कि राम नाम के प्रभाव से ही उन्हें नया जीवन मिला है और राम नाम के उच्चारण से यमदूत भाग जाते हैं।

(५)

महर्षि मृगश्रृङ्ग ने पुत्र की कामना से भगवान शिव की आराधना की थी। शिव प्रसन्न हुए और कहा कि तुम यदि दीर्घजीवी पुत्र चाहते हो तो वह गुणहीन होगा। तुम्हारी गुणवान पुत्र की कामना है तो उसकी आयु केवल सोलह वर्ष की होगी। ऋषि गुणवान सन्तान

के लिए सहमत हुए। समय पाकर ऋषि के यहाँ मार्कण्डेय नाम का एक ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। जब मार्कण्डेय ने सोलहवें वर्ष में पदार्पण किया तो माता पिता दोनों अत्यन्त चिन्तित रहने लगे। जब मार्कण्डेय को इस चिन्ता का कारण बताया गया तो उसने दृढ़ विश्वास के साथ आश्वासन दिया कि भगवान शिव को प्रसन्न करके मैं दीर्घायु प्राप्त करूँगा। मार्कण्डेय दक्षिण समुद्र के तट पर गये, वहाँ पर मार्कण्डेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की और मन्त्र साधना के मृत्युञ्जय स्तोत्र का नियमित पाठ करने लगे। मृत्यु का दिन निकट आ गया। मार्कण्डेय स्तोत्र पाठ करने ही जा रहे थे कि काल ने अपने पासे फेंकने आरम्भ कर दिये। मार्कण्डेय ने काल से प्रार्थना की कि एक बार मुझे मृत्युञ्जय स्तोत्र का पाठ करने की आज्ञा दे दीजिये। उसके पश्चात आप मेरे प्राण प्रसन्नता पूर्वक ले सकते हैं। परन्तु काल न माना और मार्कण्डेय के प्राण खींचने के लिए अपना अन्तिम पाश फेंकने ही वाले थे कि शिव लिंग से भगवान शंकर प्रकट हो गये और काल की छाती पर कठोर आघात किया। काल भयभीत होकर भागे और मार्कण्डेय की रक्षा हुई। यह कथा पद्म पुराण उत्तर० २३७।७५-९० में वर्णित है।

(६)

एक प्राचीन गाथा के अनुसार बाला जी के मन्दिर के निकट चक्रपुष्करणी नामक तीर्थ के तट पर पद्मनाथ नाम का एक ब्राह्मण निवास करता था। उसके जीवन निर्वाह का कोई साधन नहीं था। जो कुछ कभी किसी से मिल जाता, वह पा लेते और उसी पर सन्तुष्ट रहते वासनायें और कामनायें उन्हें छू तक नहीं पाई थीं। उनके जीवन की एक मात्र इच्छा यह थी कि वह निरन्तर भगवद्भक्ति में लीन रहें, उसका शरीर इस योग्य बना रहे और इन्द्रियाँ इतनी सशक्त रहें कि अपने इष्टदेव का मन्त्र-जप करता रहे। उन्हें कभी सूखे पत्तों से निर्वाह करना पड़ता और कभी केवल जल पीकर ही सन्तोष करना पड़ता।

परन्तु उनके मन में इसका लेशमात्र भी दुःख नहीं था। उनकी साधना निरन्तर चलती रही। वास्तव में उनके जीवन की साध ही यही थी कि प्रभु नाम स्मरण का अधिक से अधिक अवसर मिलता रहे, उसकी साधना में कोई वाधा नहीं आई उनका भजन चलता ही रहा।

एक दिन भक्त पद्मनाभ वन में भगवान की पूजा की सामग्री एकत्रित कर रहे थे कि एक भयंकर राक्षस ने उन पर आक्रमण किया। पद्मनाभ को उससे कुछ भय नहीं हुआ, न ही उन्हें अपने जीवन से कुछ मोह था। उन्होंने भगवान से प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझी क्योंकि उनका दृष्टिकोण यह था कि भगवान अन्तर्यामी हैं, उन्हें यदि मेरी रक्षा अभीष्ट होगी तो वे निश्चित ही इसकी व्यवस्था करेंगे। वैसे पद्मनाभ का मन्त्र जप चलते फिरते उठते-बैठते चलता रहता था। पद्मनाभ यह सोच ही रहे थे कि भगवान ने अपना प्रिय आयुध सुदर्शन चक्र राक्षस का सर काटने के लिए भेजा। राक्षस ने अनुभव किया कि चक्र का तेज कोटि सूर्यों के समान है और उससे आग की भीषण लपटें निकल रही हैं। राक्षस भयभीत होकर भागने ही वाला था कि उसी क्षण सुदर्शन चक्र ने राक्षस का सर काट दिया। भक्त के शरीर की रक्षा हुई। पद्मनाभ जैसे अनेकों भगवद्भक्त हुए हैं जिनके प्राणों की रक्षा भगवान ने दुश्मनों से की है।

(७)

स्वामी प्रकाशानन्द के बाल्यकाल की घटना है, वे जब १५ वर्ष के थे तो गोमती में स्नान के लिए डाकोर गये थे। उन्हें तैरना नहीं आता था और घाट से परिचित भी नहीं थे। नदी में थोड़ी दूर जाने पर ही एक दम गहराई आ गई। वे डूबने लगे। भीड़ के कारण काफी शोर था। इसलिए सहायता के लिए कई बार पुकारने पर भी कोई भी व्यक्ति सुन नहीं पाया। अब वह समझ रहे थे कि उनका बचना असम्भव सा ही है। मृत्युकाल निकट आते देखकर वे ॐकार का जप

करने लगें। कुछ ही क्षणों में एक स्त्री की दृष्टि उस पर पड़ी और वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी। उस पर कई व्यक्ति एक साथ जल में उतरे और उन्होंने उन्हें बचा लिया। आश्चर्य तो यह है कि जब वह स्वयं सहायता के लिए जोर-जोर से पुकार रहे थे तो भीड़ के कारण किसी ने आवाज नहीं सुनी, परंन्तु प्रणव का जब जप आरम्भ हुआ तो शीघ्र ही बचने की व्यवस्था का क्रम बन गया।

(८)

महात्मा रूपकला जी के बाल्यकाल की एक घटना है कि वे अपने दो मित्रों के साथ नदी में स्नान करने के लिए गये। अकस्मात नदी में पानी बढ़ गया और उनके एक मित्र नन्दकुमार मध्य धारा की ओर बह चले। रूपकला जी को चिन्ता हुई कि वह उसके पिता को क्या उत्तर देंगे? वह भगवान को आर्त रूप से पुकारने लगे और उच्च स्वर से सीताराम का नाम स्मरण करने लगे। भगवान ने उनकी पुकार सुनी, थोड़ी ही देर में नदी का जल घटने लगा। आश्चर्य से देखा गया कि नदी का पानी ही कम नहीं हुआ बल्कि लहरें नन्द-कुमार को किनारे की ओर ले आईं। ऐसा लग रहा था कि लहरों की यह क्रिया किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से संचालित हो रही है।

एक भक्त बालक की आर्त पुकार और भगवन्नाम स्मरण से उनके एक मित्र की जीवन रक्षा हुई। ★

रोग निवारण की चमत्कारी उपलब्धियाँ

(१)

आगरा कालेज आगरा के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डा० बेनी-चरण महेन्द्र एक बार ऐसे अस्वस्थ हुए कि सभी प्रकार की औषधियाँ

प्रयोग करने पर भी स्वस्थ न हो सके। किसी मित्र ने एक महात्मा की दैवी शक्ति के चमत्कार सुनाए और उनसे प्रार्थना करवाने को प्रेरित किया। महात्मा जी उनके यहाँ पधारे। उन्होंने रामरक्षा स्तोत्र का पाठ उच्च स्वर से किया। डा० महोदय ने अनुभव किया कि स्तोत्र के पाठ के साथ-साथ उनकी मानसिक शक्तियों का बल मिल रहा है और दस मिनट में ही वे अपने को काफी स्वस्थ अनुभव करने लगे। महात्मा जी से स्तोत्र पाठ की विधि और श्लोकों के अर्थ अच्छी प्रकार समझ लिये और नवरात्रि में सभी आवश्यक नियमों का पालन करते हुए इसे सिद्ध किया। वे इसे चमत्कारी कवच मानते थे जो सभी प्रकार की आपत्तियों से सुरक्षित रखता है। सङ्कट आने पर इसके प्रयोग से कठिनाइयों की निवृत्ति भी हो जाती है इसलिए उनके सम्पर्क क्षेत्र में विपत्ति निवारण के लिए उन्हें स्तोत्र पाठ के लिए बुलाया जाने लगा। वह परम श्रद्धा से पाठ करते और हर वार अभीष्ट सिद्धि की पूर्ति होती देखते। डा० साहब का कहना है कि सभी प्रकार की चिन्ताओं और विपत्तियों में यह स्तोत्र रामबाण जैसा काम करता है। सर दर्द बुखार, बिच्छू काटने पर, नौकरी छूटने, ऋण ग्रस्तता आदि आदि पर उन्होंने स्वयं उसके सफल प्रयोग किये हैं और हर बार सफलता ही सफलता प्राप्त हुई है।

(२)

श्रीरूढ़िमल गोयनका की गिनती कलकत्ते के अच्छे विद्वानों में थी। संस्कृत का उनका अपना ज्ञान भी संतोषजनक था और वे संस्कृत विद्वानों का अच्छा सम्मान भी करते थे। वे तब बड़तला स्ट्रीट के मकान में निवास करते थे। एक बार कलकत्ते में भयंकर प्लेग की महामारी का प्रकोप हुआ। श्रीरूढ़िमल भी उससे ग्रस्त हुए। उनके घर में केवल एक नौकर के अतिरिक्त और कोई सहयोगी नहीं था। डा० सर कैलाशचन्द्र बोस उन्हें देखने आए तो उन्होंने निदान किया

कि रूढ़िमल जी को सन्निपात हो गया है। उनका बचना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। रात्रि में किसी भी समय उनके प्राणों का त्याग हो सकता है। रूढ़िमल जी ने सोचा कि जब उनका शरीरांत होना ही है तो ईश्वर का नाम उच्चारण करते हुए ही हो तो अच्छा है। उन्होंने गङ्गाजल से शरीर पुछवाकर वस्त्र बदले और चारों ओर तकिया रखवाकर किसी प्रकार बैठ गये। भगवान श्रीकृष्ण उनके इष्ट थे। सारी रात कृष्ण नाम का जप करते रहे। प्रातः चार बजे वे अपने को पूर्णतया स्वस्थ अनुभव करने लगे। ब्राह्मण भोजन की व्यवस्था कराई और उसका प्रसाद स्वयं भी पाया। डा० सर कैलाशचन्द्र ने जब उन्हें भोजन करते देखा तो पूछा कि आप किसकी आज्ञा से भोजन कर रहे हैं? रूढ़िमल जी का स्पष्ट उत्तर था जिनकी औषधि से स्वस्थ हुआ था, उन्हीं की आज्ञा से यह प्रसाद पा रहा हूँ। डा० महोदय को अब भी पूर्ण विश्वास था कि उन्हें सन्निपात है और किसी भी समय उनकी मृत्यु हो सकती है। नौकर को वे उनकी ओर विशेष ध्यान रखने के लिये कह गये।

डा० कैलाशचन्द्र ने रोगी के लक्षणों से यही निश्चित किया था कि रोगी का बचना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है अब भी उन का विश्वास था कि शीघ्र ही उनका शरीरांत हो जायेगा। तीन चार दिन के बाद जब वे आए तो रूढ़िमल जी को पूर्ण स्वस्थ देखकर आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने पूछा कि किस औषधि से आपको स्वास्थ्य लाभ हुआ है। रूढ़िमल जी ने कहा कि बाहरी औषधियों का आप से अधिक और कौन विशेषज्ञ हो सकता है? जब आपने शीघ्र ही मृत्यु होने की घोषणा कर दी तो मैंने विश्व के सबसे बड़े चिकित्सक की शरण में जाने का निश्चय किया। माध्यम बनाया श्री मद्भागवत में वर्णित "हरिःशरणम्" मन्त्र को, भगवान कृष्ण का चित्र सामने रख कर सारी रात इस मन्त्र का जप करता रहा। प्रातः काल चार बजे के

लगभग मैंने अपने को स्वस्थ पाया और अब तक स्वस्थ हूँ। जो काम बड़ी से बड़ी औषधि ने नहीं किया, उसको हरिःशरणम् मन्त्र के चमत्कार ने सिद्ध कर दिया।

(६)

लगभग १५ वर्ष पहले ग्राम भासू जि० टोंक (राजस्थान) में विष्णु यज्ञ का आयोजन किया जाना था। इस यज्ञ के आचार्य वाराणसी के पंडित बेणीराम शर्मा गौड़ थे। यज्ञ आरम्भ होने से पहले ही भासू और आस पास के ग्रामों में चेचक का इतना व्यापक प्रकोप हुआ कि छोटे-२ बालकों की पचास की संख्या तक मृत्यु के समाचार आने लगे इससे वहाँ के लोगों का यज्ञ के प्रति उत्साह क्षीण हो गया। जब पं० बेणीरामजी दो दिन पहले वहाँ पहुँचे तो उन्हें यह निराशाजनक सूचना दी गई कि वे लोग चेचक के कारण यज्ञ को स्थगित रखना चाहते हैं। आचार्य महोदय ने उन्हें आश्वासन दिया कि यज्ञ आरम्भ होने के पहले ही वे चेचक के प्रकोप को शान्त करा देंगे। उन्होंने दो ब्राह्मणों से अनुष्ठान कराना आरम्भ कर दिया। आदेश दिया कि रात्रि भर एकासन से अनुष्ठान पूर्ण होना चाहिये। एक ब्राह्मण से उन्होंने निम्न मन्त्र द्वारा दुर्गा का संपुटित पाठ कराया।

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
सघात भेदे च नृणां मैत्री कारणमुत्तमम्॥

दूसरे ब्राह्मण से शीतलाष्टक के निम्न मन्त्र से दुर्गा का संपुटित पाठ कराया—

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्रीं शीतलायै नमो नमः॥

इन मन्त्रों में इतनी अपार शक्ति है कि चेचक के भयंकर-से भयंकर प्रकोप को भी शांत कर देते हैं। इस अनुष्ठान ने चमत्कारी प्रभाव दिखाया। जहाँ नित्य प्रति पचास बालकों की मृत्यु हो रही थी, वहाँ अनुष्ठान के पहले दिन केवल एक ही घटना हुई, उसके बाद चेचक

के कारण किसी भी बालक की मृत्यु का समाचार प्राप्त नहीं हुआ। चेचक का प्रकोप शान्त होने के बाद पूर्व व्यवस्था के अनुसार यज्ञ सम्पन्न हुआ।

(४)

यह बात उन दिनों की है जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति पद से अवकाश ले चुके थे परन्तु उनका परिवार राष्ट्रपति भवन में ही निवास कर रहा था। डा० राजेन्द्रप्रसाद जी अस्वस्थ हुए और नर्सिङ्ग होम में उनकी चिकित्सा चल रही थी। उस समय डा० राधाकृष्णन राष्ट्रपति पद पर आसीन थे। उन्होंने डा० राजेन्द्रप्रसाद के स्वास्थ्य लाभ के लिए सभी धर्मावलम्बियों से प्रार्थना के आयोजन कराये थे। डा० राजेन्द्रप्रसाद की धर्मपत्नी श्रीमती राजवंशी देवी उन दिनों राष्ट्रपति भवन में दुर्गा पाठ व अन्य प्रार्थनायें किया करती थीं। इन प्रार्थनाओं और मन्त्र साधनाओं के प्रभाव से डा० राजेन्द्रप्रसाद को जटिल रोगों से छुटकारा मिला और वे स्वस्थ होगये। कुछ समय के बाद श्रीमती राजवंशी देवी ने सुहागिन अवस्था में ही शरीर त्याग दिया।

(५)

श्रीमोहनलाल ठेकेदार का एक वर्ष का शिशु अकस्मात अस्वस्थ होगया। उसे तीव्र ज्वर और मृगी जैसे फिट आ रहे थे। न तो वह रात भर सोया और न ही किसी को सोने दिया। वैद्य डाक्टरों की औषधियों के उपचार के अतिरिक्त झाड़ा, टोना का भी सहयोग लिया गया परन्तु बच्चे की स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही गई और उसके बचने की कोई आशा न रही। विश्वास न होने पर भी बाध्य होकर माता जी की प्रेरणा से स्थानीय रामद्वारा में एक सन्त के पास गये जो "रामरक्षा-स्तोत्र" का अभिमन्त्रित जल पिलाने से बच्चे को स्वस्थ कर देते थे। सन्त के पास गये, सन्त ने एक छोटे से पात्र में जल लेकर उसमें उङ्गली घुमाते हुए 'राम रक्षा स्तोत्र' का पाठ किया और निर्देश दिया

कि बच्चे को जब जल पीने की आवश्यकता महसूस हो तो साधारण जल देने के बजाय यही अभिमन्त्रित जल दिया जाय आदेश का पालन किया गया और आश्चर्य से देखा कि बच्चे की स्थिति धीरे-धीरे सुधरती चली गई और चौथे दिन वह पूर्ण स्वस्थ हो गया।

(६)

कुछ वर्ष पहले की घटना है, रायपुर में वाई० पी० बघेल नाम के एक कृषि सहायक निवास करते थे। उनका साला रणवीर हृदय रोग से ग्रस्त हुआ। आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान के बड़े से बड़े विशेषज्ञों की चिकित्सा कराई गई परन्तु स्वास्थ्य में कुछ भी प्रगति होती दिखाई न दी। एलोपैथिक प्रणाली को छोड़कर आयुर्वेद की ओर झुकाव हुआ। आयुर्वेद चिकित्सा से भी जब कुछ लाभ होता दिखाई न दिया तो वे पूर्ण निराश हो गये और सभी औषधियों का त्याग करके महामृत्युञ्जय मन्त्र का जाप कराने का निश्चय किया। रायपुर के निकटवर्ती ग्राम के एक शास्त्री जी से अनुष्ठान करवाने की व्यवस्था हो गई अनुष्ठान से पूर्व रणवीर मूर्छित दशा में चल रहा था और सभी को यही आशा थी कि किसी समय भी उसके प्राण शरीर से अलग हो सकते हैं। अनुष्ठान के सातवें दिन रोगी ने आँखें खोलीं और माँ को आवाज दी। सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और आशा बँधी कि भगवान शिव की कृपा से वह पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा। मन्त्र जाप के साथ भजन कीर्तन और आरती के कार्यक्रम भी आरम्भ कर दिये गये। सवा लाख महामृत्युञ्जय जप का अनुष्ठान २५ दिन में पूर्ण हुआ। तब तक रोगी की हालत काफी सुधर चुकी थी। उसने कुछ दिनों के बाद ही वह बिना किसी औषधि के पूर्ण स्वस्थ होगया।

यह घटना आधुनिक विज्ञान के पक्षपातियों को महान चुनौती है। विज्ञान का अत्यधिक विकास होने पर उसका अधूरापन बराबर बना हुआ है। प्रायः यह सुनने में आता है कि इस असाध्य रोग की औषधि अभी तक विज्ञान द्वारा आविष्कृत नहीं हो पाई है।

जहाँ विज्ञान असफल रहा वहाँ मन्त्र विज्ञान ने अपनी सफलता के झण्डे गाढ़ दिए।

(७)

श्री पुरुषोत्तम दास वैष्णव की नानी को सन्निपात हो गया था। रोग असाध्य था। आँखों से देखना और कानों से सुनना सब बन्द हो गया था। उनके अन्य लक्षणों से भी यह प्रकट होने लगा था कि उनका अन्तकाल अब निकट ही है। उन्हें भूमि पर उतारने की बात सोची जाने लगी और अन्त्येष्टि की सारी सामग्री एकत्रित की जाने लगी। श्री पुरुषोत्तम दास को रामायण पाठ का अच्छा अभ्यास था और सीताराम के नाम जप पर अटूट विश्वास था। उन्होंने नानी के पास मुख ले जाकर उच्च ध्वनि से कई बार सीताराम नाम का उच्चारण किया। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि केवल उस नाम ध्वनि से नानी की मूर्छा समाप्त हुई और उनकी आँखें खुल गई। श्वाँस की गति भी ठीक तरह से चलने लगी। और भी ऐसे लक्षण प्रकट हो गये जिससे स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होने लगा कि अब शीघ्र ही मृत्यु का भय नहीं है। श्री पुरुषोत्तमदास को नानी के लिए एक औषधि मिल गई। जब भी उनकी स्थिति बिगड़ती देखते, जोर २ से उनके कान में सीताराम की मधुर ध्वनि करते। हर बार सीताराम के उच्चारण से उनकी स्थिति में सुधार देखा गया। इस तरह से कुछ ही क्षणों में होने वाली मृत्यु आठ दिन तक टलती रही। नानी बहुत वृद्धा थीं। उनका शरीर भी इतना जर्जर हो चुका था कि उनका जीना भी उनके हित में नहीं था परन्तु आठ दिन तक ऐसा अनुभव होता रहा जैसे सीताराम की ध्वनि से यमदूत भतभीत होकर भाग जाते थे। अन्यथा कोई कारण नहीं था कि आठ दिन तक उनके प्राणों का संचार बना रहता।

(८)

सन् १९३७ की बात है, पंडित बाबूराम द्विवेदी टी. बी.

ग्लान्डूस से प्रभावित हुए और आपरेशन के लिये कवीर चौराहा अस्पताल वाराणसी में उन्हें प्रविष्ट किया गया। और भी उन्हें कई प्रकार के रोग थे। एक बार शीत ज्वर ने आ घेरा जिसने पुराना होकर तिजरा का रूप ग्रहण कर लिया। जब सब प्रकार के उपचार कर लिये गये और कुछ भी लाभ की आशा दिखाई न दी तो उनके पिता पं० रामवरन द्विवेदी ने रामचरित मानस की एक चौपाई और गीता के श्लोक की साधना करने के लिये प्रेरित किया। चौपाई और श्लोक इस प्रकार हैं—

चौपाई

दीन दयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

श्लोक– अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं।। (९।२२)

रोगी ने इनकी साधना आरम्भ कर दी और एक दिन जब ज्वर चढ़ने का समय था, मन्त्रों का एकाग्रता पूर्वक उच्चारण किया उन्हें इसका अद्भुत प्रभाव दिखाई दिया। उस दिन जाड़े और ज्वर के कोई भी लक्षण दिखाई न दिये। उसके बाद से फिर उन्हें कभी शीत ज्वर नहीं हुआ।

(६)

एक प्राचीन कथा के अनुसार कट्टर जैनी शासक कुणपाण्ड्य ने चोल राज्य के भूतपूर्व मन्त्री के सहयोग से अर्द्ध रात्रि के समय चोल राज्य के दुर्ग पर भीषण आक्रमण किया और उसे पराजित करके चोल राज्य की पुत्री वनितेश्वरी देवी से पाणिग्रहण किया। दोनों का गृहस्थ जीवन प्रसन्नता पूर्वक चलता रहा। कुछ वर्षों के बाद कुणपाण्ड्य ऐसे अस्वस्थ हुए कि फिर उठ न सके। सभी प्रकार की औषधियाँ उन पर प्रभावहीन दिखाई पड़ रही थीं। केवल एक ईश्वरीय औषधि का प्रयोग करना ही शेष रहा था। वनितेश्वरी शंकर की

उपासना करती थी उसे दृढ़ विश्वास था कि महामृत्युञ्जय निश्चित रूप से उसके पति की रक्षा कर सकते हैं। वनितेश्वरी के मन में एक स्फुर्णा हुई कि यदि उसके पति इस बात के लिए सहमत हो जाँय कि स्वस्थ होने पर शैव उपासना को वे अपने राज्य का राज धर्म स्वीकार कर लेंगे तो उन्हें शीघ्र ही आरोग्य लाभ होगा। राजा ने यह योजना स्वीकार की। वनितेश्वरी ने राजा को शिवार्चन का जल पिलाया और मृत्युञ्जय स्तोत्र की साधना ब्राह्मणों द्वारा कराई जाने लगी। मृत्युञ्जय साधना फल लाई और लोगों ने आश्चर्य से देखा कि जब राज्य के सभी बड़े से बड़े चिकित्सक राजा के जीवन से निराश हो गये थे; वे इस मृत्युञ्जय साधना के चमत्कारी प्रभाव से शीघ्र ही स्वस्थ होने लगे। पूर्ण स्वस्थ होने पर राजा ने अपने राज्य में घोषणा कर दी कि शैव उपासना मेरे राज्य का राज्य धर्म है। अत: सभी प्रजा-जनों को शिवोपासना ही करनी चाहिए। इस आज्ञा की उपेक्षा करने वाला दण्ड का भागी होगा।

(१०)

प्रार्थना द्वारा आरोग्य प्राप्ति की क्रिया को विदेशों में अधिक विकसित किया गया है। इसका अधिकांश श्रेय फिल्मोर दम्पति को है। फिल्मोर पंगु थे और उनकी पत्नी मर्टिल फिल्मोर सदैव रुग्ण रहा करती थीं। प्रचारक के भाषण से प्रभावित होकर उसने प्रार्थना की साधना आरम्भ की उसे आशातीत लाभ हुआ। उसने दवाओं का सहारा छोड़ दिया। उसे इतना विश्वास हो गया कि प्रार्थना द्वारा वह औरों की चिकित्सा करने लगी। श्री कैसके का उसने पंगुपन दूर कर दिया। तब उसके पति ने भी इस मार्ग का अविलम्बन किया और वह भी चलने लगा। इन चमत्कारों ने उन्हें अत्यन्त प्रभावित किया और उनकी भावनायें जन-जन में प्रार्थना पद्धति के व्यापक विस्तार के लिए उमड़ पड़ीं। उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य यही निर्धारित कर लिया, हजारों को उन्होंने नव-जीवन, नवस्फूर्ति व नवशक्ति प्रदान

की। उन्होंने "यूनिटी स्कूल आफ क्रिश्चिएनिटी" नामक संस्था की स्थापना की और अपने विचारों के प्रसार के लिए 'यूनिटी', 'विजडम', 'प्रोग्रेस' गैंड विजिनेस' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जिनसे लाखों ने शान्ति पथ की प्रेरणा प्राप्त की की।

इङ्गलैंड की "राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा समिति" द्वारा ३००० चिकित्सालय सञ्चालित होते हैं। उनमें दवा के साथ-साथ रोगियों के आरोग्य के लिए प्रार्थना भी होती है। स्वास्थ्य मंत्रालय ने भी यह व्यवस्था कर रखी है कि ७५० या अधिक रोगियों की क्षमता वाले बड़े चिकित्सालयों में स्थायी पादरी प्रार्थना करते हैं। छोटे चिकित्सालयों में गिरजाघरों के पादरी इस कर्तव्य की पूर्ति करते हैं। रोग विषयक परिचर्या में डाक्टर और पादरी दोनों भाग लेते हैं। वहाँ की ब्रिटिश मेडीकल ऐसोसियेशन प्रार्थना को चिकित्सा की सफलता के लिए आवश्यक मानती है।

नोवल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० अलेक्सिस कैरल ने अपनी पुस्तक "मैन दी अननोन" में लिखा है—"प्रार्थना से कुछ ही क्षणों में मुँह के घाव, शरीर के अन्य घाव, कैंसर, मूत्राशय के रोग और यक्ष्मा आदि के रोगियों के यह रोग मिट गये हैं। कोढ़ के रोगी स्वस्थ हुए हैं।' 'कैनेडा निवासी डा० स्रीं अलवर्ट ई० विल्फ प्रार्थना के माध्यम से ही चिकित्सा करते थे। 'थियोलोंजिया जर्मनिका' पुस्तक के अनुसार विश्वास पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करने पर बड़ी तथा भयंकर बीमारी से मनुष्य छूट जाता है। प्रार्थना मन्त्र साधना का ही एक प्रकार है।

—★—

आर्थिक विकास और संकट की निवृत्ति

(१)

लगभग ३२ वर्ष पहले की बात है, वृन्दावन के श्री उड़िया बाबा की प्रेरणा से हाथरस के श्री गणेशीलाल ने करणवास गङ्गा तट पर योग्य ब्राह्मणों से २४ लक्ष गायत्री मन्त्र के पुरश्चरण का एक आयोजन कराया था। पुरश्चरण की पूर्णाहुति के बाद से ही यजमान की आर्थिक स्थिति सुधरने लगी। वृन्दावन के पंडित तुलसीदास शर्मा भी उस पुरश्चरण में सम्मिलित थे। लाला गणेशीलाल के निकट संपर्क में रहने वालों का कहना है कि पुरश्चरण के दो वर्ष के भीतर ही उनका चार गुना आर्थिक विकास हो गया।

(२)

श्री भयाशंकर दयाशंकर पंड्या जब सिद्धपुर में निवास करते थे और उन्हें सर्व प्रथम रेल की नौकरी मिली थी तो उनका वेतन २५) था। वे नित्य प्रति गायत्री का जप किया करते थे। एक हजार बार मन्त्र जपना तो उनका दैनिक नियम था ही, धीरे-धीरे इस सँख्या को बढ़ाकर उन्होंने चार हजार तक बढ़ा लिया और यही क्रम उनका काफी दिनों तक चलता रहा। यह बात उन दिनों की है जब बड़ौदा एक स्वतंत्र राज्य था और भारतीय गणतन्त्र में सम्मिलित नहीं हुआ था। वे कुछ समय में ही उस छोटी सी नौकरी से असिस्टेंट ट्रैफिक सुपरिन्टेन्डेन्ट के स्तर तक पहुँच गये और ३ सौ रु० वेतन पाने लगे। उस समय ३००) काफी महत्व रखते थे। इस आर्थिक सफलता का श्रेय वे गायत्री माता को ही देते थे। बाद में उन्होंने सन्यास की दीक्षा ले ली और मधुसूदन स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(३)

महामना मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र को एक वार घोर आर्थिक संकट में फँसना पड़ा, जब मालवीय जी को इसकी सूचना मिली तो उन्होंने तार द्वारा उसे निर्देश दिया "ईश्वर और उसकी शक्तियों पर निष्ठा रक्खो, निराश मत हो, ईश्वरीय शक्तियों में मानवीय घोरतम कष्टों को दूर करने की क्षमता होती है। तुम आर्त भाव से गजेन्द्र स्तुति का पाठ करो। इससे तुम्हारी कठिनाई शीघ्र ही दूर हो जायेगी।" एक पत्र में उन्होंने अपने पुत्र को अपना स्वयं का अनुभव बताते हुए लिखा था कि एक बार मैं ऐसा ऋणग्रस्त हो गया था जिसकी निवृत्ति का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। गजेन्द्र स्तुति के पाठ से ही मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ और मैं ऋण मुक्त हो गया। पुत्र ने मालवीय जी के आदेश को स्वीकार किया और उनका संकट दूर हुआ।

(४)

हरिद्वार के गुरुकुल काँगड़ी महाविद्यालय के आठवीं कक्षा के ब्रह्मचारी रामचन्द्र के योग क्षेम की कुछ वर्ष पूर्व की अद्भुत घटना प्रकाश में आई है जिस पर बुद्धिवाद सहज में विश्वास नहीं कर सकता परन्तु श्री विद्याधर विद्यालंकार द्वारा वर्णित यह सत्य घटना है।

ब्रह्मचारी रामचन्द्र को उसका मासिक शुल्क उसके दादा आठ वर्ष से भेज रहे थे परन्तु अकस्मात किसी कारणवश उनकी मृत्यु हो गई और रामचन्द्र पर एक प्रकार से वज्रपात सा हो गया क्योंकि इसके बाद गुरुकुल में उसकी अध्ययन की कोई आशा दिखाई न दे रही थी। बाध्य होकर रामचन्द्र को अपने घर जालन्धर जाना पड़ा जहाँ उसका पिता सरकारी कार्यालय में काम करता था। उनकी आय सीमित थी। अतः परिवार का पालन पोषण बड़ी कठिनाई से हो पाता था। इसलिए उसके पिता में यह आर्थिक सामर्थ्य नहीं थी कि रामचन्द्र को

गुरुकुल में पढ़ा सकें। रामचन्द्र की सौतेली माँ उसे हर प्रकार से परेशान करती थी और चाहती थी कि अध्ययन की अपेक्षा वह नौकरी कर ले ताकि परिवार के लिए कुछ आर्थिक सुविधा हो जाय। रामचन्द्र को वह हर समय ताड़ना देती रहती थी। पिता भी उसके बहकावे में आकर झिड़कियाँ देते रहते थे। इस प्रतिकूल वातावरण से रामचन्द्र को बड़ी मानसिक वेदना होती परन्तु वह विवश था अध्ययन अधूरा रहने से कोई अच्छी नौकरी मिलनी सम्भव नहीं, थी! और न ही स्वतन्त्र रूप से कोई व्यापार करने की स्थिति में वह था। झिड़कियाँ सहने का तो वह अभ्यस्त ही हो गया था। परन्तु एक दिन पिता ने किसी कारण से क्रोधित होकर उसे घर छोड़ने का आदेश दे दिया। अब सारे संसार में रामचन्द्र के साथ सहानुभूति और सहयोग रखने वाला कोई नहीं था। केवल उसे ईश्वर का ही भरोसा था। उसने घर छोड़ दिया। परन्तु यह नहीं जानता था कि वह कहाँ जा रहा है अथवा उसे कहाँ जाना चाहिए। बालक रामचन्द्र का मस्तिष्क इतना विकसित नहीं हुआ था कि वह अपने जीवन निर्वाह के लिए सफल भावी योजनाएँ बना सकता। उसे इस समय किसी अज्ञात शक्ति के हीं सहयोग की अपेक्षा थी।

निराश होकर रामचन्द्र पास के एक खेत में पेड़ की छाया में बैठ गया और जब तक कोई नया मार्ग न सूझ पड़े, तब तक उस खेत और पेड़ की छाया को हीं अपना निवास स्थान बनाने का निश्चय किया। गुरुकुल में आठ वर्ष तक रहकर उसके संस्कारों का परिशोधन हुआ था। वह नियमित रूप से संध्या, हवन और गायत्री जप किया करता था। उसके वे संस्कार जागृत हुए, उसने ईश्वर को आर्तभाव से पुकारा और माध्यम बनाया गायत्री की दिव्य शक्ति को जिसके सामने कोई भी कार्य असम्भव नहीं प्रतीत होता। रामचन्द्र तीन दिन से भूखा था, अन्न का एक दाना भी उसे प्राप्त नहीं हो पाया था।

केवल कुएँ का ठण्डा जल पीकर ही पेट की आग बुझाने का प्रयत्न कर रहा था। इस घोर निराशाजनक स्थिति में भी वह ईश्वर से असंतुष्ट नहीं हुआ। वरन् वह नियमित रूप से सन्ध्या और गायत्री जप करता ही रहा। अब उसका शरीर बहुत कमजोर हो चला था। अकस्मात एक अद्भुत घटना हुई। उसे लघुशंका की आवश्यकता हुई। उसकी निवृत्ति के लिए वह कुएँ से आने वाली नाली की ओर गया। वहाँ बैठते ही उसने देखा कि नाली के पानी में एक लिफाफा बहता हुआ आ रहा है। दूर तक कोई व्यक्ति भी दिखाई नहीं दे रहा था। उसने कौतूहलवश उस लिफाफे को उठाकर खोला तो उसमें दो सौ रुपये के नये नोट निकले। नगर में उसने किसी भी व्यक्ति से आर्थिक सहयोग की प्रार्थना भी नहीं की थी और नहीं अपनी दयनीय स्थिति से अवगत कराया था। फिर यह चमत्कारी सहयोग कहाँ से प्राप्त हुआ ? उसे विश्वास हुआ कि अत्यन्त असहाय दशा में देखकर ही भगवान ने उसकी सहायता की है।

उन दो सौ रुपयों से रामचन्द्र ने अपने भावी जीवन का शुभारम्भ किया। अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से कार्य शुरू किया। कुछ वर्ष बाद वह बड़ा ठेकेदार बन गया और उसने काफी धन उपार्जन किया बिना किसी की सहायता के अल्पायु में ही आत्म निर्भर बनने का श्रेय वह अपनी नियमित सन्ध्या उपासना को ही देते हैं।

(५)

श्रीमती के० लक्ष्मी देवी के पति बम्बई में एक होटल का संचालन करते थे। घाटा होने के कारण उन्हें होटल बन्द करना पड़ा और दो हजार रु० कर्ज हो गये। कर्ज चुकाने के लिए उन्होंने एक वर्ष का समय माँगा। इस बीच में वे हर तरह का प्रयत्न करते रहे परन्तु उन्हें सफलता न मिली। अब उन्हें कर्ज चुकाने का कोई साधन दिखाई न दिया। वर्ष में केवल नौ दिन ही शेष रहे थे। उन्हें आशंका

थी कि रुपये न देने पर वे लोग उनका घोर अपमान करेंगे। श्रीमती लक्ष्मी देवी अखण्ड रूप से (रात्रि के चार घण्टे छोड़कर) सीताराम का नाम जप करने लगी। दसवें दिन बम्बई का एक परिचित दूध वाला उनके पास आया और सूचना दी कि उनके इनामी बांड पर ७५००) का इनाम प्राप्त हुआ है। बम्बई से आते समय ४०) के कर्ज के बदले में उन्होंने दूध वाले को पाँच-पाँच रुपये के खरीदे हुए आठ प्राइज बाँड ही दिये थे। दूध वाले ने ईमानदारी बरती। उसने केवल अपने चालीस रु० और बम्बई से आने जाने का खर्च लिया। बाकी सब रुपये उन्हें दे दिए। इस रुपये से उन्होंने सुविधा पूर्वक कर्ज चुकाया और शेष रुपया व्यापार में लगा दिया। वे इसका श्रेय सीताराम के अखण्ड नाम स्मरण को ही देती हैं।

(६)

श्री सुन्दरलाल बोहरा लिखते हैं कि उनके पितामह के एक हजार रुपये किसी व्यापारी के यहाँ जमा थे। उस व्यापारी ने अचानक अपने दिवालिएपन की घोषणा कर दी। इस पर वे बड़े चिंतित हुए। उन्होंने महाराज स्वामी जी श्री उत्तम नाथजी से निवेदन किया। उत्तमनाथजी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि एक उपाय करो। तेरे रुपये तुझे मिल जायेंगे। स्वामी जी ने उन्हें "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र के जाप की साधना का निर्देश दिया और कहा कि आप जल के अतिरिक्त और कुछ भी आहार न लेना और सारा दिन इस मन्त्र का जाप करते रहना। प्रातः काल तुम्हारे अभीष्ट की सिद्धि हो जायेगी।

प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में उस व्यापारी का मुनीम आया और ब्याज सहित रुपये लौटा दिये। इसकी उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि वह रुपये वापस मिल पाएँगे परन्तु मन्त्र के प्रभाव से यह सम्भव हो गया।

श्री एम० एल० शाण्ड़िल्य १९२७ में सेंट जाँस कालेज आगरा में प्रोफेसर थे। किसी कारण से उनकी नौकरी छूट गई तो उन्होंने बुलन्दशहर में वकालत करना आरम्भ कर दिया। परन्तु उनका वहाँ मन न लगा। वे सोचने लगे कि अध्यापक का जीवन ही उनके स्वभाव के अनुकूल है। उन्होंने नव-रात्रि में व्रत सहित गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान करने का निश्चय किया। उनकी साधना निर्विघ्न रूप से चलती रही। उनका पालन पोषण आर्य समाजी परिवार में हुआ था। अतः मन पर वैसे ही संस्कारों का होना स्वाभाविक ही था। नव रात्रि के बाद एक रात्रि को भगवान कृष्ण ने उन्हें गीता के अध्ययन की प्रेरणा दी। वे भगवान कृष्ण को योगीराज और महापुरुष मात्र ही मानते थे। अतः उस आदेश पर कोई विशेष ध्यान न दिया। कई दिन के बाद उनके एक सम्बन्धी वहाँ ठहरे जिनके पास बहुत सी पुस्तकें थीं। जाते समय भूल से वे ज्ञानेश्वरी गीता वहाँ छोड़ गये। स्वप्न के आदेश ने ज्ञानेश्वरी गीता के अध्ययन की ओर प्रेरित किया। भगवान कृष्ण के प्रति उसकी श्रद्धा जागरति हुई। उन्होंने केवल गीता के अध्ययन की प्रेरणा ही नहीं दी बल्कि पुस्तक भी सुलभ कर दी। वे मूर्ति खंडक से मूर्ति-पूजक बने और गीता की सभी उपलब्ध पुस्तकों का गहन अध्ययन किया। वे अनुभव करने लगे कि उनके जीवन में एक ऐसा मोड़ आया है जिसकी वे कभी कल्पना भी न करते थे। एक प्रकार से उनके जीवन का काया-कल्प ही हो गया। इससे उनका आगामी जीवन परम शांति से व्यतीत होने लगा। नव रात्रि के गायत्री-अनुष्ठान से उनके आत्मिक उत्थान की भूमिका तो प्रशस्त हुई ही, श्री राम कालेज आफ कामर्स, दिल्ली में वे प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हो गये अब तो वे वहाँ से भी अवकाश प्राप्त कर चुके हैं और जम्मू के एक डिग्री कालेज के प्रधानाचार्य हैं।

स्मृति शक्ति का असाधारण विकास

[१]

महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द को गायत्री साधना से ही अद्भुत स्मृति शक्ति प्राप्त हुई थी। शीतला से बाल्यकाल से ही उनकी देखने की शक्ति का लोप हो गया था। वह ऋषिकेश में घण्टों गङ्गा जी में खड़े हो कर गायत्री जप किया करते थे। इससे उनकी स्मृति का इतना विकास हो गया कि वह एक बार जिस पाठ को सुन लेते थे, उसे स्मरण कर लेते थे। एक बार की घटना है कि गङ्गा में स्नान कर रहे एक विद्वान अष्टाध्यायी का पाठ कर रहे थे। उन्होंने इसे ध्यान से सुना और वह पूरी कण्ठ हो गयी। वेद विद्या का विकास भी उन्होंने गायत्री जप से ही किया। आश्चर्य तो यह है कि नेत्र हीन होने पर भी वे सब शास्त्रों में पारङ्गत हो गये जब कि उन्होंने किसी भी उच्च विद्यालय में शिक्षा न पाई थी। उनके शास्त्र ज्ञान के असाधारण विकास का श्रेय लगातार ३ वर्ष तक गङ्गा तट पर गायत्री-मन्त्र की उपासना को हैं। कहा जाता है कि उठते-बैठते चलते-फिरते और खाते पीते कभी उनका गायत्री जप बन्द नहीं रहता था। यही कारण है कि अन्धे होने पर भी शास्त्र ज्ञान के साथ उन्होंने अलौकिक ब्रह्म तेज भी प्राप्त किया था। जयपुर और अलवर के महाराज उनसे बहुत प्रभावित थे और उनकी हर बात को आज्ञा स्वीकार कर शिरोधार्य करते।

[२]

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती आर्य समाज के मर्धन्य नेता' प्रचारक, ओजस्वी वक्ता और व्याख्याता व लोह लेखनी के धनी हैं। आप यूरोप और अफ्रीका के विभिन्न देशों की यात्रा करके वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रचार कर चुके हैं। आपने तत्व ज्ञान, प्रभु दर्शन प्रभु भक्ति, उपनिषदों का सन्देश, और घने जङ्गल में महामन्त्र

आनन्द गायत्री कथा और एक ही रास्ता जैसी लोकप्रिय पुस्तकों की रचना की है। वेद शास्त्रों के इस महान विद्वान के बाल्य काल पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो आश्चर्य होता है उनका बाल्यकाल निराशा और अंधकार से ओत प्रोत था। जीवन में प्रगति के कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते थे। उनकी मानसिक निराशा इतनी बढ़ी कि अल्पआयु में ही आत्महत्या करने की सूझी। ऐसा निराश और क्षीण बुद्धि का व्यक्ति गायत्री मन्त्र की साधना के प्रभाव से कैसे एक महान विद्वान बन सकता है, इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है—

आनन्द स्वामी जी इस समय सन्यास आश्रम में दीक्षित हैं। उनके गृहस्थाश्रम का नाम श्री खुशहालचन्द जी था। वे जलालपुर जटाँ प० पंजाब के रहने वाले थे, जो अब पाकिस्तान में है। उनके पिता लाला गणेशदास जी स्थानीय आर्य समाज के मन्त्री थे। बालक खुशहाल चन्द में प्रतिभा और बुद्धि नाम की कोइ भी सम्पत्ति न थी। वे अत्यन्त मन्द बुद्धि के थे। अबनी कक्षा का पाठ याद करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। कक्षा में लगभग पूरा दिन वे बेंच पर खड़े ही रहते थे। किसी तरह से छटवीं सातवीं श्रेणी में तो पहुंच गये थे परन्तु इससे आगे बढ़ना उनकी बौद्धिक क्षमता के बाहर था। स्कूल में उन को निकम्मा और अयोग्य होने वे कारण अध्यापक की डाँट डपट सुननी पड़ती और घर पर पिताजी भर्त्सना करते। स्कूल और घर दोनों स्थानों में उन्हें हतोत्साहितही किया जाता। वेभी विवश थे। ऐसा लगता था कि उनकी बुद्धि के तन्तु मृतप्रायः हो चुके हैं और बौद्धिक क्षेत्र में बढ़ने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो चुके हैं। यदि किसी व्यक्ति की प्रगति नहीं हो पाती है तो वह इतना दुःखी और निराश नहीं होता जितना कि सामाजिक अपमान से होता है। सभी उन्हें निकम्मा अयोग्य और मूर्ख की संज्ञा दे रहे थे। चारों ओर से अपमान के थपेड़े लगा रहे थे। बालक खुशहालचन्द्र इस घोर अपमान को सहन न कर लगा सका और जीवन का अन्त करने की योजना बनाई। वे एक दिन

स्कूल से आते समय "दुवाढ़ा" नाम के बरसाती नाले पर गये जिसमें वर्षा ऋतु के कारण पर्याप्त मात्रा में जल था और बाढ़ की सी स्थिति अनुभव हो रही थी। निराश बालक उसमें कूद पड़ा कि शायद इससे मानसिक संतोष मिलेगा। परन्तु भगवान को जिस व्यक्ति से कुछ बड़े काम लेने होते हैं, वे स्वयं उनके शरीर की रक्षा करते हैं। बालक मूर्छित हो गया और दो मील नीचे नदी के किनारे जा लगा, जहाँ से उसे उसके परिचित व्यक्तियों ने घर पहुँचा दिया।

एक बार स्वामी नित्यानन्द जलालपुर आये थे। उनको भोजन कराने का कार्य खुशहालचन्द को सोंपा गया उनसे सम्पर्क बढ़ा। एक दिन खुशहालचन्द को बहुत उदास देखकर उन्होंने इसका कारण पूछा, खुशहालचन्द अपने असफल और निराश जीवन से दुखी होकर फूट-फूट कर रोया। स्वामी जी ने उन्हें आश्वासन दिया कि निराश होने की कोई बात नहीं है, बुद्धि को तीव्र करने की एक अचूक औषधि तुझे बताता हूँ। वह औषधि थी गायत्री जप की अनन्य साधना। बालक खुशहालचन्द प्रातः दो तीन बजे ही उठ बैठते और स्नानादि से निवृत होकर गायत्री जप आरम्भ कर देते। 'झपकी आने पर पानी के छींटे आँखों पर लगाते। जप काल में नींद न आने पाये, इसके लिए उन्होंने यह व्यवस्था की थी कि छत में एक रस्सी बाँधकर उससे अपनी चोटी को कसकर बाँध दिया था। ऊँघ आने पर सिर का नीचा होना स्वाभाविक ही है। सिर नीचे होने पर रस्सी खिचती और उन्हें सावधान रहने की चेतावनी मिलती। पाँच छः मास के निरन्तर जप से उनकी बुद्धि में कुछ परिवर्तन होने लगा। पुस्तकों के पाठ कुछ याद होने लगे। बुद्धि की तीव्रता धीरे २ बढ़ने लगी। जहाँ कक्षा में वे बिल्कुल असफल रहते थे, वहाँ अब वे केवल पास ही न होकर पारि-तोषिक भी लेने लगे।

एक बार वहाँ महात्मा हंसराजजी व्याख्यान देने के लिए आए थे तो उन्होंने व्याख्यान की रिपोर्ट लेने का प्रयत्न किया और उस

रिपोर्ट को महात्मा जी को दिखाया । वे रिपोर्ट देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, उन्होंने उनके पिताजी से कहा कि जो काम आपने इन्हें दे रखा है वह इसके उपयुक्त नहीं है । इस बालक में महानता के लक्षण दिखाई देते हैं, इसे आप मेरे साथ लाहौर भेज दें । महात्मा हंसराज के सहयोग से वे लाहौर के आर्य गजट में ३०) मासिक वेतन पर कार्य करने लगे । वहाँ कार्य करते-करते वे इसके सम्पादक भी बन गये । १६२१ तक सम्पादक के पद पर कार्य करते रहे, इसके बाद उन्होंने अपना दैनिक उर्दू पत्र 'मिलाप' के नाम से आरम्भ किया । अनुभवी लोगों को यह पूर्ण आशा थी कि कुछ वर्षों में जो धन सम्पत्ति इन्होंने अर्जित की है, वह सब इसमें स्वाहा हो जाएगी, परन्तु वे निराश न हुए और गायत्री माँ की कृपा और आशीर्वाद से सफल मनोरथ हुए । उनका उर्दू मिलाप खूब चमका । इसके बाद उन्होंने हिन्दी मिलाप का प्रकाशन आरम्भ किया । पाकिस्तान बनने पर लाहौर से दिल्ली आ गये और यह दोनों पत्र दिल्ली से प्रकाशित किए जाने लगे हैं जो आज भी उनके पुत्रों के सम्पादन में चल रहे हैं ।

जीवन से निराश होकर आत्महत्या की चेष्टा करने वाला खुशहालचन्द केवल गायत्री जप की साधना के सहयोग से सफल पत्रकार, लेखक, वक्ता, विद्वान और प्रचारक बना । लाखों की सम्पत्ति उन्होंने अर्जित की । उनका गृहस्थ जीवन परम सुखी रहा । जीवन में उन्होंने किसी भी वस्तु का अभाव अनुभव न किया । उन्हें धन दौलत भी मिली और कीर्ति भी । परन्तु वे इसमें आसक्त न रहे, उनका गृहस्थ जीवन भी भोग में त्याग का आदर्श लिए हुए था । समय आने पर उन्होंने सारे जीवन की अर्जित सम्पत्ति को त्याग दिया और सन्यास आश्रम में दीक्षित हो गये । अब उनके आत्मिक उत्थान का अगला मार्ग प्रशस्त है । इसमें कोई रुकावट नहीं है और वह तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं ।

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती का समग्र जीवन इस बात

का प्रमाण है कि गायत्री मन्त्र की शक्ति प्रस्फुटित होने से बौद्धिक विकाश होता है, विवेक की जागृति होती है, चरित्र का निर्माण होता है नैतिक उत्थान होता है, धन सम्पत्ति और कीर्ति प्राप्त होती है। लौकिक सफलताओं के साथ पारलौकिक सुख शांति की उपलब्धि भी होती है। खुशहालचन्द्र से आनन्द स्वामी बनना मन्त्र शक्ति का एक उज्ज्वल प्रमाण है।

डाकुओं से अलौकिक सुरक्षा की घटनायें

(१)

सन् १९५५ के अप्रेल मास की बात है, जब जिला बाराबंकी (उत्तर प्रदेश) के ग्राम नरहरीपुर में विष्णुयज्ञ का आयोजन हुआ था। उसमें वाराणसी के याज्ञिक सम्राट पं० बेणीराम शर्मा गौड़ को आचार्यत्व के लिये निमन्त्रित किया गया था। यज्ञ सम्पन्न हो गया और आचार्य महोदय वाराणसी जाने को तैयार हो गये। नरहरीपुर से निकटवर्ती स्टेशन रुद्रौली है। जो वहाँ से छः सात मील दूर है। बैलगाड़ी के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं था। वह अपने दो साथियों सहित रुद्रौली रेलवे स्टेशन की ओर प्रस्थान करने के लिये बैलगाड़ी में बैठे ही थे कि ग्राम के कुछ वृद्ध पुरुषों ने उनको सूचित करते हुए कहा कि मार्ग में प्रायः चोर और डाकू मिलते हैं। आपका रात को स्टेशन जाना खतरे से खाली नहीं है परन्तु उन्होंने एक न मानी और स्टेशन की ओर चल दिये।

हुआ वही जिसकी सबको आशंका थी। थोड़ी दूर से ही तीन व्यक्तियों ने उनका पीछा करना आरम्भ कर दिया। उनके पास टार्च

थीं ओर वे बार २ टार्चों से रोशनी फेंक रहे थे। जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि उनका पीछा करने वाले डाकू ही हैं और अपने लिए उचित स्थान देखकर उन्हें घेर कर अपने उद्देश्य की पूर्ति करेंगे तो श्री वेणीराम शर्मा ने यजुर्वेद के निम्न वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण आरम्भ कर दिया।

रक्षोहणो वो वलगहन: प्रोक्षामि वैष्णवान्नक्षोहणोवो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्नक्षोहणो वो बलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्नक्षोहणो वां बलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ (५।२५)

रक्षसां भागोऽसि निरस्तँरक्षऽइदमहँरक्षोऽभितिष्ठामीदमहँ रक्षऽववधऽ इदमह ँरक्षोऽधमं नमामि।

धृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्ण वाथाँ वायो वे स्तोकानमग्निाराज्यस्य वेतु स्वाहाकृतऽउर्ध्वरभसं मारुतं गच्छतम् (६।१६)

यो अस्मभ्यरातीयाद्यश्व नो द्वेषते जन:।
निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्व तं भस्मसा कुरु (११।८०)

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्र मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ (१४।१७)

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाणा ऽ आधिपत्यंब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्सोम:।
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रँ स्पृतं पञ्चदश स्तोम:
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रँ स्पृतँ सप्तदश स्तोम:।

मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्य दिवो वृष्टिर्वात स्पृत ऽ एकविशँस्तोम: (१४।२४)
वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विँश स्तोम:।

आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा: स्पृता: पञ्चविँशः स्तोम: ।
आदित्यं भागोऽसि पूष्णाऽआधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोत: ।
देवस्य सवितर्भागोऽसि वृहस्पतेराधिपत्यँसमोचीर्दिश स्पृताश्च तुष्टोम स्तोम: (१४।२५)
यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्य प्रजास्पृताश्चतुश्चत्वारिँश स्तोम: ।
ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतँस्पृतं त्रयस्त्रिँश स्तोम: । (१४।२६)
नम: कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नम: सहमाना निव्याधिन ऽ आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नम: (१६।२०)
नमो वंचते परिवंचते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण ऽ इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नम: सृकायिभ्यो जिघाँसदभ्यो मुष्णतां पतये नमो नमो ऽ सिमद्भयो नक्तं चरद्भयो विकृन्तानां पतये नम: । (१६।२१)
नम ऽ उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुंलाना पतये नमो नम ऽ इषुमदभ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आतन्वानेभ्य: प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम ऽ आयच्छद्भयो ऽ स्यद्भयश्च वो नम: ।। (१६।२२)
कृणुष्व पाज: प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेमावां ऽ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्रुणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठै: ।(१३।९)
तव भ्रमास ऽ आशुषया पतयन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुच न: । तषूँष्यग्ने जुह्वा पताङ्गानसन्दिता विसृज विश्वगुल्का: ।।

(१३।१०)

प्रति स्पशा तूर्थितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्ध: ।

वो ना दूरे ऽ अघश ँसा योऽअन्यग्ने माकिष्टे व्याथिरादधर्षीत्
(१३।११)
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यावमुष्व न्यमित्रा ऽ ओषतात्तिग्तहेदे ।
यो वो ऽ अराति ँसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्
१३।१२
ऊर्ध्वो भवप्रति विध्या ध्यस्मदाविष्कृणुष्व} दैव्यन्यग्ने । अव
स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामि प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा
तेजसा सादयामि । (१३।१३)
अग्निमूर्द्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या ऽ अयम् ।
अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजस सादयामि ।
(१३।१४)

उपरोक्त वेद मन्त्रों का लगातार उच्चारण हो रहा था और डाकू भी कुछ समय तक उनका पीछा करते रहे परन्तु उनके निकट आने का साहस न हुआ और वे दो-तीन फर्लांग की दूरी पर ही चलते रहे । जब वेद मन्त्रों का नौ बार पाठ पूर्ण हो चुका तो गाड़ी वाले ने पंडित जी को सूचित किया कि अब वहाँ से रेलवे स्टेशन एक मील की दूरी पर ही है और वह डाकू भी अब दिखाई नहीं दे रहे हैं । चारों ओर देखने पर भी वे डकैत दिखाई नहीं पड़ रहे थे । वे लोग रात्रि को दो बजे स्टेशन पहुंचे । उस रात्रि को डाकुओं के कारण निश्चित ही कोई विपत्ति आ सकती थी परन्तु वेद मन्त्रों के प्रभाव से ही उनकी रक्षा हो पाई ।

(२)

श्रीधर स्वामी एक बार दिग्विजय करने के बाद अपने घर वापस आ रहे थे । कुछ डाकुओं को संदेह हुआ कि इनके पास काफी धन और जेवर हैं । मार्ग में ही उन्होंने श्रीधर स्वामी को ललकारा और सब कुछ निकाल देने का आदेश दिया । श्रीधर स्वामी को अपने प्रभु की अपार शक्ति पर विश्वास था । उन्होंने अपने नेत्र बन्द किए

और श्री राम मन्त्र का मानसिक उच्चारण करने लगे। कुछ ही क्षणों में डाकुओं ने आश्चर्य से देखा कि इससे पहले मीलों तक कोई भी व्यक्ति दिखाई न दे रहा था परन्तु अब श्याम वर्ण का एक तेजस्वी युवक धनुष वाण से सुसज्जित हमारा प्रतिरोध करने के लिए तैयार है डाकुओं ने इससे किसी शक्ति के चमत्कार का अनुभव किया और भयभीत हो गये। अभी कुछ देर पहले जो निर्दयी व्यक्ति धन जेवर निकालने का आदेश दे रहे थे और प्रतिरोध करने पर उन्हें मारने के लिए भी तैयार हो जाते, अब उन्हीं से उस श्याम वर्ण तेजस्वी युवक के वाणों से सुरक्षित रखने की प्रार्थना कर रहे हैं। डाकू तो चले गये। इस घटना से श्रीधर स्वामी को वैराग्य हो गया। वे सोचने लगे कि अपने धन की सुरक्षा के लिए मैंने अपने प्रभु को इतना कष्ट दिया है। उन्होंने काशी में श्री परमानन्दजी स्वामी से सन्यास की दीक्षा ली और उसी की परम साधना में लग गये।

(६)

अयोध्या के स्वामी राम अवधदास ने अपने पूर्व जीवन की एक घटना अपने एक शिष्य को इस प्रकार सुनाई थी। वे जौ पुर के एक निकटवर्ती गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उनका नाम राम लगन था। उनके पिता पंडित सत्यनारायणजी का अध्ययन काशी में हुआ था। उनकी गिनती अपने क्षेत्र के अच्छे विद्वानों में थी। वह पुरोहिती का काम करते थे। एक बार अपने एक यजमान के विवाह को सम्पन्न कराने के लिये वाहर गये हुए थे। आठ वर्ष का राम लगन और उनकी माँ ही अकेली घर में थीं। राम लगन और उनका सारा परिवार राम और हनुमान का परम भक्त था। पंडित जी को घर में बाहर देखकर उस रात को कुछ डाकू उनके घर आ गये। जिस समय डाकू घर में आये, उस समय राम लगन की माँ उनको हनुमान जी के द्वारा लंका दहन की कथा श्रवण करा रही थीं। पन्द्रह सोलह डाकुओं को एक साथ देखकर माँ तो घबरा गई

परन्तु बालक ने सहज बालस्वभाव से माँ को कहा कि अभी तो हनूमान जी लङ्का दहन कर रहे थे। उनको पुकारो वे हमारी अवश्य सहायता करेंगे। माँ को कुछ भी नहीं सूझ पा रहा था। तब बालक ने ही हनूमान जी को आर्तभाव से पुकारा कि आप लंका बाद में जला लें। पहले हमारे घर में आये डाकुओं को एक दम भगा दें अन्यथा यह हमें बहुत कष्ट देंगे। मेरी माँ घर में अकेली है और भय से काँप रही हैं। कुछ ही क्षणों के बाद न जाने कहाँ से एक बड़ा बन्दर कूदकर घर में आ गया। डाकू उसे लाठियों से भगाना ही चाहते थे कि उसने दो तीन डाकुओं पर एक दम ऐसा प्रहार किया कि वे गिर पड़े। डाकू का नेता आगे आया तो उस बन्दर ने उसकी दाड़ी खीची जिससे वह मूर्छित हो गया। फिर दो तीन को और गिराया। डाकू लाठी से प्रहार करते ही रहे परन्तु उनकी लाठियों से उस बन्दर को कोई हानि न हुई। डाकू स्वयं ही चिल्ला रहे थे और एक बन्दर के सामने वे कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। इतने में कुछ लोग पड़ोस से आ गये और डाकू भाग गये। अपने मूर्छित सरदार को कन्धों पर उठा कर ले गये। पड़ोसियों के आते ही बन्दर भी लापता हो गया। सभी को आश्चर्य था कि रात को यह बन्दर कहाँ से आ गया ओर उसने इतने डाकुओं को पराजित करके कैसे भगा दिया। राम लगन को विश्वास था कि हनूमान जी ही उनकी पुकार सुनकर स्वयं आये और हमें डाकुओं के चंगुल से छुड़ाया।

(४)

काफी समय पहले की बात है श्री राम कृष्ण बिहानी अपसे एक कर्मचारी के साथ कपड़ा खरींदने के लिये ढाका जाने के उद्देश्य से रिक्शा पर रेलवे स्टेशन की ओर जा रहे थे। उनके पास नौ हजार रु० थे। उनके रिक्शे के पीछे तीन बदमाश आ रहे थे । वे इसी टोह में थे कि किसी भी निर्जन अथवा अँधेरी जगह आने पर उन्हें घेर कर रुपये छीन लिए जाएँगे। जब उन्हें देखकर श्री राम कृष्ण को भय

प्रतीत होने लगा तो उन्होंने हनुमान जी का आह्वान किया और उच्च स्वर से उनके मन्त्र का उच्चारण करने लगे। इतने में एक निर्जन स्थान आ गया और वे डाकू अपनी गुप्त भाषा में आक्रमण करने की योजना बनाने लगे। संकट ग्रस्त व्यक्ति के सामने ईश्वरीय शक्तियों की शरण में जाने के अतिरिक्त और क्या मार्ग हो सकता है। श्रीरामकृष्ण ने भी जोर २ से हनुमान जी को पुकारना आरम्भ किया। डाकू निरन्तर टार्च से रोशनी फेंक रहे थे। कुछ ही क्षणों में टार्च की रोशनी में उन्होंने आठ दस बैल गाड़ियाँ देखीं और कुछ ढाँढस बँधा। डाकुओं ने भी अनुभव किया कि इतने व्यक्तियों के होते हुए लूटना सम्भव नहीं है। वे वापस लौट गये। कुछ देर के वाद जब गाड़ियों का पता लगाने का प्रयत्न किया गया तो स्टेशन मार्ग पर और नहीं डोमार की ओर जाने वाली सड़क पर कोई बैलगाड़ी देखी गई। उन बैलगाड़ियों पर गाड़ीवान भी उन्होंने स्वयं देखे थे परन्तु उनका कहीं पता न चला। अन्त में यही निश्चय हुआ कि यह हनुमान जी का ही चमत्कार था जिसने उनकी रक्षा की।

—★—

वाक्य सिद्धि की उपलब्धि

(१)

घरसोड़ा में गाँव से बाहर एक कुटिया बनाकर एक ऋषि-राज ने सात वर्ष तक लगातार निराहार रहकर गायत्री के पुरश्चरण किए। २४-२४ लक्ष के दो पुरश्चरण करने के पश्चात उन्हें वाक्य सिद्धि प्राप्त हुई थी। जिस बात को कह देते थे, वह पत्थर पर लकीर की तरह निश्चित रूप से पूर्ण होती थी। यह घटना 'कल्याग' गोरखपुर के सन्त अङ्क में प्रकाशित हुई थी।

(२)

इन्दौर में ओंकार जी जोशी नाम के एक प्रतिष्ठित विद्वान हुए जिनकी महाराज तुकोजी राव से काफी घनिष्ठता थी। यहाँ तक कि महाराज प्रातः काल घूमने जाते तो इन्हें साथ ले जाते।

श्री ओंकार जी जोशी बचपन में बड़ी मंद बुद्धि के विद्यार्थी थे। वे अपने विकास का वर्णन इस प्रकार से करते हैं कि उनके बाबा ने संन्यास आश्रम ग्रहण करने के पश्चात मान्धाता के मन्दिर के पीछे की गुफा में गायत्री की घोर तपस्या आरम्भ की थी जिसको उन्होंने अन्त समय तक जारी रखा। जब उन्हें यह आभास हुआ तो उन्होंने अपने सब घर वालों को बुलाकर यह सूचना दी कि हम अब अपना शरीर त्याग रहे हैं। तुम में से जो भी कुछ माँगना चाहे माँग ले। और तो किसी ने भी कोई इच्छा प्रकट नहीं की परन्तु ओंकारजी जोशी ने अपने बाबा से निवेदन किया कि मेरी बुद्धि अत्यन्त मंद है, ऐसा लगता है कि मेरी अल्प शिक्षा ही हो पायेगी, स्मरण शक्ति के अभाव में बीच में ही कोई ऐसा व्यवधान आ सकता है जिससे शिक्षा का मार्ग अवरुद्ध हो जाय। मुझे आप ऐसा आशीर्वाद दें जिससे मेरा बौद्धिक विकास हो। बाबा ने उन्हें गायत्रीं मंत्र से अभिमन्त्रित जल पिलाया और विद्वान होने का आशीर्वाद दिया। उसी दिन से उनकी बुद्धि में अद्भुत परिवर्तन होता दिखाई दिया और उनका उत्तरोत्तर विकास होता गया। वे असाधारण प्रतिभा के धनी बन गये।

★●★

सिद्ध महात्मा जिन के रोम-रोम से मन्त्र ध्वनि होती थी

महात्मा शतानन्द जी परिव्राजक ने अपने गुरुदेव श्री देवगिरि जी महाराज की गायत्री साधना और सिद्धि पर प्रकाश डाला है कि किस प्रकार से वे सिद्ध पुरुषों की खोज में हिमालय की गुफाओं के चक्कर लगाते रहे। पहले वे उत्तराखण्ड हिमालय की ओर गये जहाँ वे अपनी जानकारी के आधार पर लघु साधनाएँ करते रहे परन्तु उससे उनको कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में वे चाहते यह थे कि भाग्य से उन्हें कोई ऐसा सिद्ध गुरु मिल जाय जो शक्ति पात से उनकी कुण्डलिनी जागृत करदे और वे सिद्ध हो जाँय। वे यह भूल रहे थे कि सिद्ध महापुरुष उन्हीं को शक्ति-पात करते हैं जो साधना से इसका अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

महात्मा देवगिरि जी चार वर्ष तक तीर्थों, तपोवनों और गुफाओं में घूमते रहे परन्तु उनका हित साधन न हो पाया। इस भ्रमण में उनको अनेकों प्रकार के महात्माओं के दर्शन हुए, जिनमें से कोई मौत अभ्यास करने वाला था और कोई केवल फल फूल ग्रहण करके वर्षों से साधना रत था। सभी के पास वे रहे परन्तु जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे गये थे, उनकी अभीष्ट सिद्धि न हो पाई और मन में घोर निराशा उत्पन्न हो गई। निराश होकर वे घर लौटने ही वाले थे कि उन्हें अन्तर से गङ्गोत्री से उत्तर दिशा की ओर चलने की प्रवल प्रेरणा हुई। ऐसा अनुभव हुआ मानो कोई शक्ति उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रही है। थोड़ी देर में वे गुफा के सामने जा खड़े हुए, जहाँ एक सिद्ध महात्मा साधना रत थे। वहाँ उन्हें आश्चर्य हुआ कि उस गुफा गायत्री मन्त्र की सूक्ष्म ध्वनि चारों ओर से सुनाइ दे रही थी, ऐसा

अनुभव होता था कि अनेकों साधक वहाँ साधना कर रहे हैं परन्तु चारों ओर दृष्टि डालने पर भी कोई व्यक्ति उन्हें दिखाई नहीं दिया उन्होंने अनेकों प्रकार के परीक्षण किये परन्तु कोई स्पष्ट कारण सूझ न पड़ा। कुछ दिन वहाँ रहने पर उन्हें यह पता चला कि इन महात्मा की आयु लगभग ४८० वर्ष है। वह सदैव गायत्री की साधना किया करते हैं। उन्हें कभी किसी ने कोई आहार ग्रहण करते नहीं देखा और न ही कभी मल-मूत्र त्याग करते देखा था। एक दिन उन महात्मा ने स्वयं ही देवगिरि जी से कहा कि कोई भी सिद्ध पुरुष अनधिकारी शिष्य का शक्तिपात नहीं करता है। पहले उसको अपने को अधिकारी बनाना पड़ता है। फिर वह स्वयं ही उसे ऊँचा उठा देते हैं।

उन महात्मा ने देवगिरि जी को गायत्री सिद्ध कुछ अन्य महात्माओं के भी दर्शन कराए जिनको सर्दी गर्मी के प्रभाव पर पूर्ण अधिकार था, जो शरीर का कायाकल्प कर सकते थे और विना आहार के जीवन यापन कर सकते थे। अदृश्य होने और आकाश गमन की उनमें सामर्थ्य थी।

अन्त में देवगिरि जी को विदा करते हुए उन महात्मा ने कहा कि हमारी गुफा तक किसी भी व्यक्ति का पहुंचना सरल नहीं हैं, तुम्हें अत्यन्त निराश देखकर मैंने अपने पास बुला लिया था। अब इसके बाद इधर मत आना। केवल एक शिक्षा तुम्हें देता हूँ कि निष्ठापूर्वक निरन्तर गायत्री का जाप करते रहो। इसी से कालान्तर में तुम्हें सभी प्रकार की शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त होंगी।

इसके बाद महात्मा देवगिरि जी जीवन पर्यन्त गायत्री तपस्या में संलग्न रहे और अपने शिष्यों को भी इसी महामन्त्र की साधना करने के लिये प्रेरित करते रहे।

—❋—

जब लकड़ी की तलवार लोहे में परिणित हुई

ठाकुर भुवनसिंह चौहान महाराणा उदयपुर के उच्च दरबारियों में से थे। वे भगवान कृष्ण के परम भक्त थे। कृष्ण मंत्र का जाप उनकी दिनचर्या का एक आवश्यक अङ्ग था। गृहस्थ रहकर भी वे किसी महात्मा से कम न थे।

एक दिन महाराणा के साथ वे शिकार को गये। महाराणा ने एक हरिणी को देखा परन्तु उसे पकड़ न पाए। भुवनसिंह महाराणा के साथ ही थे। वे हरिणी के पीछे दौड़े। उसे पकड़ कर राजपूती जोश में तलवार से उसके दो टुकड़े कर दिए। इससे केवल हरिणी के ही दो टुकड़े नहीं हुए वरन् उसके पेट के बच्चे के भी दो टुकड़े हो गए। इस घटना का भुवनसिंह के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भविष्य में शिकार करके पशुओं को निर्दयता पूर्वक मारने की कुप्रवृत्ति को छोड़ने का निश्चय किया। इस योजना को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्होंने अपनी लोहे की तलवार का त्याग किया। उसके स्थान पर लकड़ी की तलवार वे अपने साथ रखने लगे ताकि कभी महाराणा के साथ फिर शिकार को जाना पड़े तो मेरे हाथ से किसी जीव की हत्या न हो पाए।

एक सामंत भुवनसिंह जी की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा से जलते थे। उसने महाराणा को शिकायत की कि भुवनसिंह के पास लोहे की तलवार न होकर लकड़ी की तलवार है। महाराणा को विश्वास न हुआ। उस सामंत ने जब अपनी शिकायत को बार-बार दुहराया तो महाराणा ने किसी विशेष युक्ति का सहारा लेने का निश्चय किया। महाराणा ने एक दिन तालाब के तट पर एक भोज की व्यवस्था की

सभी दरबारी सामन्तों को आमन्त्रित किया गया। भोज के बाद महाराणा ने कहा "आज देखें किसकी तलवार सबसे ज्यादा चमकती है।" और स्वयं अपनी तलवार निकालकर दिखाई। सभी सामन्त अपनी-अपनी तलवारें म्यान से निकालकर दिखाने लगे परन्तु भुवनसिंह चुप चाप बैठे हुए थे। इससे महाराणा को भी कुछ आशंका उत्पन्न हुई और उनसे कहा कि वे भी अपनी तलवार म्यान से निकालें। भुवन सिंह यह कहना ही चाहते थे कि उनकी तलवार लकड़ी की है। परन्तु किसी अज्ञात शक्ति से लकड़ी की जगह लोहा निकल गया और भुवनसिंह ने उसी शक्ति की प्रेरणा से तलवार म्यान से बाहर निकाल ली। भुवनसिंह की म्यान से निकली तलवार लकड़ी के बजाय लोहे की बन गई। उसमें बिजली जैसी चमक थी जिससे सभी की आखें चौंधिया गईं। तलवार में ऐसी चमक किसी ने देखी नहीं थी। महाराणा प्रसन्न हुए और उस द्वेषी सामन्त को घोर दण्ड देने को तैयार हो गये। महाराणा ने तत्काल उस सामन्त का सर उतारने की आज्ञा दे दी। परन्तु भुवनसिंह ने उसको क्षमा करने का अनुरोध किया और कहा कि वास्तव में मेरी तलवार लकड़ी की ही थी। भगवान ने भक्त की लाज बचाने के लिये लकड़ी को लोहा बना दिया था। महाराणा और सभी उपस्थित सामन्तों को यह देखकर आश्चर्य हुआ और भुवनसिंह के मन्त्र की सराहना करने लगे।

—★—
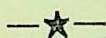
मूसलाधार वर्षा में भी धूनी ठण्डी न हुई

सौ वर्ष से अधिक की बात है, अयोध्या में रामअवधदास नाम के एक वैरागी साधू निवास करते थे। थे तो वह षट्दर्शन के उत्कट

विद्वान परन्तु वे हर समय श्री सीताराम के नाम में ही तल्लीन रहते थे। उनकी कोई कुटिया नहीं थी। खुले आकाश के नीचे सरयू के किनारे पर एक छोटा सा पेड़ उनका सर्वस्व था। वे केवल दो घण्टा सोते शेष सारा समय भजन, पूजन और कीर्त्तन में लगाते। उनकी कीर्तन ध्वनि से सारा वातावरण ही सीताराम मय बन गया था, साधना से उन का अपना अन्तःकरण तो पवित्र हो ही गया था, उस क्षेत्र में रहने वाले पशु पक्षियों पर भी अमिट प्रभाव पड़ा। ऐसा लगता था जैसे पक्षी अपनी बोली में सीताराम का ही कीर्त्तन कर रहे हों। कुत्ते बिल्लियों की बोली में भी ऐसा ही आभास होता था। वृक्षों की खड़खड़ाहट से सीताराम की ध्वनि सुनाई देती थी। सरयू के जल प्रवाह से भी वही आवाज सुनाई देती थी। वर्षा की टिप २ में भी सीताराम का यशोगान होता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वामी रामअवधदास ने उस क्षेत्र के वातावरण पर पूर्ण अधिकार करके उन्हें अपने अनुकूल ढाल लिया हो।

स्वामी जी की धूनी रात दिन जलती रहती थी। वे वर्षा ऋतु में भी कोई कुटिया नहीं बनाते थे और वर्षा होते रहने पर भी वहीं पेड़ के नीचे पड़े रहते। स्वामी जी चमत्कारों के प्रदर्शन के विरुद्ध थे परन्तु एक चमत्कार लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि मूसलाधार वर्षा होती रहती थी, परन्तु स्वामी जी की घूनी कभी ठण्डी होती नहीं देखी गई।

———

चोरियों का पता बताने की असाधारण सामर्थ्य

कुछ समय पहले बिरहल में श्रीविष्णुदत्त वानप्रस्थी नाम के उच्च कोटि के गायत्री साधक हो गये हैं जिन्होंने एक वर्ष में ही सवा-

लक्ष गायत्री जप के सात अनुष्ठान किए थे। इन सभी अनुष्ठानों में उन्होंने अनुष्ठान के सभी नियमों का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन किया था। पूर्ण ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, नमक, मसालों और मिठाई का त्याग, नंगे पाँव रहना, मौन, एकान्त सेवन, भोजन स्वयं बनाना, अल्प वस्त्रों से काम चलाना, शास्त्रों का स्वाध्याय और किसी प्रकार की कामुक वार्ता से दूर रहना और सत्य व्रत का पालन करना। इन सभी तपश्चर्याओं को वे साधना काल में करते रहे। इन साधनाओं के साथ उन्होंने एक चांद्रायण व्रत का भी समावेश किया। चन्द्रमा की कलाओं के साथ अपने आहार को नियमित मात्रा में कम करना पड़ता है। अमावस्या और प्रतिप्रदा को चन्द्रमा बिल्कुल दिखाई नहीं देता। इन दोनों दिन कुछ भी ग्रहण नहीं करना होता। चन्द्रमा की कलाएँ जैसे २ बढ़ती जाती हैं, वैसे ही वैसे आहार की नियमित मात्रा भी बढ़ती रहती है और पूर्णिमा को साधक पूर्ण आहार ग्रहण करता है। चान्द्रा-यण व्रत स्वयं में एक फलदायिनी तपस्या है। गायत्री साधना से संयुक्त होकर तो यह सोने पर सुहागे का काम करता है।

एक वर्ष की इस घोर साधना से वानप्रस्थी जी के मानसिक व आत्मिक क्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हुए। उनको स्थूल शरीर में जितनी निर्बलता आती दिखाई दी, उनके सूक्ष्म शरीर में उतनी ही शक्तियों का अवतरण होने लगा। अन्तःकरण की पवित्रता से उन्हें ऐसा आभास होने लगा कि यदि इसी प्रकार की साधना कुछ वर्ष तक और चलती रहे तो जीवन का परम लक्ष्य पूर्ण हुआ ही समझना चाहिए।

वानप्रस्थी जी को साधना के फलस्वरूप जो सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं उनका लोकहित में प्रयोग करना आरम्भ किया। वे पहाड़ी क्षेत्र में निवास करते थे जहाँ सर्प और बिच्छुओं का बाहुल्य था। उन्होंने सर्प के काटे हुए अनेकों रोगियों को गायत्री मन्त्र की शक्ति से आरोग्य प्रदान किया था जिनकी स्थिति बहुत निराशाजनक हो

हो चली थी ! कई व्यक्तियों ने अपनी चोरियों के सम्बन्ध में उनसे पूछताछ की थी। उन्होंने चोरों के इस प्रकार पते बताए थे जैसे कि उन्होंने स्वयं उन्हें चोरी करते देखा हो। एक बार एक चोर उनके गाँव से जा रहा था जो बाह्य दृष्टि से भला व्यक्ति ही लगता था। उनके अनुरोध करने पर गाँव वालों ने उसे पकड़ लिया। उसके पास ही काफी जेवर रुपये, एक पिस्तौल और ३० कारतूस निकले। यह सब चोरी का सामान था। वानप्रस्थी जी से जो व्यक्ति मिलने के लिए आता, वह बिना पूछे उनका नाम,पता और उद्देश्य बता देते। कई बार उन्होंने लोगों को सट्टा भी बता दिया था जिससे उनको काफी लाभ हुआ था। कुछ लोगों को उन्होंने ऐसी गुप्त बातें बताई थीं जिनको उनके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। उन्होंने इसी प्रकार के अनेकों गायत्री सिद्धियों का प्रदर्शन किया था। जिससे उन का यश दूर २ तक फैल गया था।

भाले का घाव अच्छा होने की परम्परागत घटना

बाली के मन्दिरों को देखकर ऐसा आभास होता है। मानो कोई यात्री दक्षिण भारत के मन्दिरों का दर्शन कर रहा हो। भारत की संस्कृति आज भी वहाँ सुरक्षित है। गीता की दैवी सम्पत्ति और पुराणों के देवासुर संग्राम के प्रतीक के रूप में "भूत पिशाच नृत्य" किया जाता है जो मनुष्य की मानसिक वृत्तियों का द्योतक है। गङ्गा के प्रति वहाँ अगाध आस्था है। भूत पिशाच नृत्य में दैवी नृत्य करने वाला अपने शरीर में भाला मार देता है। जिसे शक्तिशाली मनुष्य भी निकालने में असमर्थ रहता है परन्तु मन्दिर का पुजारी "हे गङ्गा हे गङ्गा"

कहता हुआ आता है और कुछ मन्त्रों के उच्चारण से गङ्गा जल से उसे छींटा देता है। भाला निकल जाता है और गङ्गाजल का ही लेप करने से घाव अच्छा हो जाता है। यह भावुकता नहीं है, एक भारतीय यात्री श्री के० के० आलमेल की आँखों देखी घटना है। इस सम्बन्ध में एक लेख धर्मयुग में छपा था।

卐●卐
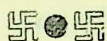
इच्छानुसार वर्षा का नियन्त्रण और आवाहन

(१)

मलेशिया (दक्षिण पूर्व एशिया) के लोग मन्त्र शक्ति पर विश्वास करते है और आवश्यकता पड़ने पर मन्त्र शक्ति के प्रभाव से वर्षा को रोकने का प्रयत्न करते हैं। 'वमोह' नाम की जादूगरनियाँ इस कार्य की विशेषज्ञ मानी जाती हैं। एक बार अमेरिका की एक फिल्म कम्पनी वहाँ शूटिंग के लिये गई थी। इन 'वमोह' के सहयोग से ही उन्होंने अपना कार्य निर्विघ्न पूरा किया था। कुछ वर्ष पूर्व राष्ट्र-मण्डल की क्रिकेट टीम 'मैच' खेलने के लिये मलाया गई थी, वर्षा की आशंका होने पर सावधानी के लिये 'वमोह' को बुलाया गया। वहाँ उपस्थित लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि 'कुआलालम्पुर' (मलाया की राजधानी) के सभी ओर मूसलाधार वर्षा हो रही थी, खेल के मैदान के सभी निकटवर्ती क्षेत्रों में वर्षा का उत्पात हो रहा था, खेल का मैदान खेल के अन्त तक बिल्कुल सूखा रहा। मन्त्र शक्ति का यह अद्भुत चमत्कार 'वमोह' के लिये एक साधारण-सा कार्य है।

(२)

तिब्बत की भाषा संस्कृत पर आधारित हैं। मन्त्र विद्या वहाँ

खूब फली-फूली। वहाँ आज भी अनेकों मन्त्रसिद्ध-योगी मिलते हैं। लामाओं का मन्त्र शक्ति द्वारा ओलों को रोकना और वर्षा को वन्द कर देना प्रसिद्ध है अनेकों विदेशी लेखकों ने आँखों देखे समाचार लिखे हैं। अंग्रेजी पत्रिकाओं में इन्हें प्रकाशित भी किया गया है। २० जनवरी १९४१ के अंग्रेजी ट्रिव्यून में छपे एक लेख के अनुसार 'अलाइस इलिजवेथ' ने लिखा है कि महाराज ने उन्हें लामा-नृत्य देखने का निमन्त्रण दिया था परन्तु निश्चित समय पर वर्षा हो रही थी और हम लोग वाटर प्रूफ और छाताओं सहित पहुँचे। हमें सन्देह था कि लामाओं के सुन्दर वस्त्र वर्षा से भीग जायेंगे और नृत्य की शोभा जाती रहेगी, परन्तु हुआ इसके विपरीत ही। महाराज से जव हमने अपना सन्देह प्रकट किया, तो उनका सहज उत्तर था—"मेरे लामा वर्षा को मन्त्र द्वारा वन्द करना जानते हैं, और हुआ भी वैसा ही। नृत्यस्थल पर पहुँचते-पहुँचते वर्षा वन्द हो चुकी थी।"

अलाइस इलिजवेथ के 'वाइज आफ मिस्टिक इण्डिया' में लिखा है कि लामा लोग अपने हाथ में एक तुरही लेते हैं, जिसमें स्वर्णादि विभिन्न धातुओं के टुकड़े और पीली सरसों के दाने होते हैं। मन्त्रों के उच्चारण से लामा ओलों के बड़े टुकड़ों को तोड़ देते हैं और खेती रक्षा करते हैं। जब वादल की गरज हो रही हो और वर्षा की सम्भावना हो, तो वह अपनी धर्म पुस्तक में से एक संस्कृत के मन्त्र का उच्चारण करता है। इसका अधिकार उसे लम्बी साधना के पश्चात् ही प्राप्त होता है। मन्त्र पढ़ने से वह बादल की गरज को वन्द कर देता है। जब ओले गिरने आरम्भ हो जाँय, तो उस दशा में पीली सरसों के दाने छिड़क कर मन्त्र पढ़ता है और ओला-वृष्टि वन्द हो जाती है।

यह वर्णन किसी आस्थावान भारतीय का नहीं वरन् तर्कशील विदेशी का है, जिसके मन में मन्त्र के प्रति अगाध श्रद्धा जाग उठी।

(६)

फ्लोरिडा के ओलाण्डों क्षेत्र में पूर्ण सूखे के आसार दिखाई दे रहे थे और जनता में घोर निराशा उत्पन्न हो रही थी कि यदि शीघ्र वर्षा न हुई तो लोग एक-२ बूँद पानी को तरसेंगे।

फ्लोरिडा के ऋतु-विज्ञान कार्यालय ने भी यह घोषित कर दिया था कि काफी समय तक वर्षा की कोई आशा नहीं करनी चाहिये। इसी बीच हवाई द्वीप की एक मण्डली को वर्षा नृत्य के लिये आमन्त्रित किया गया। आश्चर्य से देखा गया कि नृत्य की समाप्ति पर आकाश में घनघोर बादल मँडराने लगे और मूसलाधार वर्षा हुई।

एक बार सिंगापुर के नेशनल थियेटर में थाईलैंड की नाटक मण्डली को वर्षा नृत्य के लिये आमन्त्रित किया गया। नृत्य के तीन घण्टे पश्चात सिंगापुर में घोर वर्षा हुई जिसकी कभी आशा नहीं थी।

卐—卐
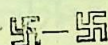
नरसी मेहता का योग क्षेम स्वयं भगवान करते थे

श्री नरसी मेहता का नाम केवल गुजरात प्रान्त से ही नहीं, सारे भारतवर्ष से ही सम्बद्ध है। उनके भक्ति विषयक पद आज भी हजारों पिपासुओं को आध्यात्म पथ पर अग्रसर होने के लिये प्रेरित करते रहते हैं। उनका जन्म वड़ नगरा जाति के नागर ब्राह्मण कुल में काठियावाड़ के जूनागढ़ नगर में हुआ था। गुजरात का बच्चा-बच्चा आज भी उनके पदों को बड़े प्रेम से गाता है। वे श्री कृष्ण के भक्त थे। अपनी साधना में उनका अटूट विश्वास था। इष्टदेव का कीर्त्तन

करते समय उन्हें अपने स्थूल शरीर की सुध बुध नहीं रहती थी। उनका सर्वस्व श्री कृष्ण के लिये था। उन्होंने अपना सर्वस्व इष्ट देव को समर्पित कर दिया था। वास्तव में जब साधक अपनी समस्तशक्तियों को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देता है, ईश्वर उनका योग क्षेम स्वयं करते हैं। नरसी मेहता के सम्बन्ध में भी यही बात चरितार्थ हुई। वे गृहस्थ थे। उनका भरा पूरा परिवार था। कहा जाता है कि नरसी मेहता के पुत्र और पुत्री का जब विवाह हुआ था तो भगवान कृष्ण ने स्थूल शरीर धारण करके उनके समस्त कार्य सम्पन्न किये थे। केवल विवाह कार्य ही नहीं, उनकी सभी सांसारिक उलझनों का समाधान स्वयं भगवान करते थे। नरसी मेहता को इसकी कुछ भी जानकारी नहीं रहती थी परन्तु उनका कोई भी काम कभी अधूरा नहीं रहा।

—❋—

हिंसक वृत्ति का परिवर्तन

(१)

यह बात उन दिनों की है जब चैतन्य महाप्रभु पुरी में रहकर साधनारत थे। एक दिन अकस्मात उन्होंने वृन्दावन जाने की योजना बनाई और किसी भी अनुयायी को बिना बताये चल दिए। किसी राज-पथ पर जाते तो हजारों की भीड़ उनके पीछे चल देती परन्तु सड़क को छोड़कर उन्होंने वन का मार्ग पकड़ा और कटक की दाहिनी ओर घने जङ्गल में प्रविष्ट हुए। इस निर्जन वन में हिंसक पशुओं का सामना स्वाभाविक था। वे अपने मस्ती में श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण करते हुए जा रहे थे। उनको किसीभी हिंसक पशु से कोई भय नहीं था। वह निर्भय रूप से हिंसक पशुओं के बीच में से निकल जाते थे और वे बिना आक्रमण किये रास्ता छोड़ देते थे। एक बार एक व्याघ्र

मार्ग में सो रहा था। महाप्रभु श्रीकृष्ण का नामोच्चारण करते हुए प्रेमावेश में जा रहे थे । उन्हें मार्ग में सोता हुआ व्याघ्र दिखाई नहीं दिया और उनके पैरों का स्पर्श उससे हो गया। व्याघ्र उठा और चोंका महाप्रभु श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण कर रहे थे। व्याघ्र अपनी हिंसक वृत्ति को भूल गया और महाप्रभु की मुद्रा में ही नृत्य करने लगा। मानों वह भी श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण कर रहा हो या करना चाहता हो।

उसी वन में एक दिन महाप्रभु एक नदी में स्नान कर रहे थे कि एक हाथियों का झुण्ड भी वहाँ पानी पीने आया। एक हिंसक हाथी महाप्रभु पर आक्रमण करने के उद्देश्य से उनके सामने ही आ गया। महाप्रभु ने "कृष्ण कृष्ण" कह कर एक जल का छींटा उस हाथी पर मारा। इसके प्रभाव से हाथी अपने आक्रमण को भूल गया और नाचने लगा जैसे वह भी कृष्ण कृष्ण कह रहा हो।

(२)

गढ़मण्डल के राजा पीपाजी को जब वैराग्य हुआ तो राज्य की व्यवस्था करके स्वामी रामानन्द से दीक्षा ली और भगवद्भजन में लग गये। एक बार वे पत्नी सहित द्वारिका की यात्रा पर गये। वहाँ से जब लौट रहे थे तो वन में उन्हें एक व्याघ्र मिला। रानी तो उसे देख-कर भयभीत हो गयी परन्तु राजा ने उनको ढांढ़स बंधाते हुए कहा कि गुरुदेव ने समस्त पशु पक्षियों और मनुष्यों में अपने इष्टदेव के दर्शन करने की साधना बताई थी। यह शेर भी हरिरूप ही है। राजा अपने इष्ट मन्त्र का जप करने लगा और अपनी तुलसी की माला शेर के गले में डालते हुए उससे कहा कि तुम भी कृष्ण नाम का जाप करो। इस मन्त्र की साधना से घोर पाप में लिप्त व्यक्ति भी भवसागर से पार उतरे हैं। कहा जाता है कि शेर अपनी हिंसक वृत्ति को भूल गया। उसने माँस त्याग दिया और सात दिन तक वृक्षों के सूखे पत्ते चबाकर पेट की आग बुझाता रहा और कृष्ण मन्त्र का जाप करता

रहा। अन्त में उसने शरीर त्यागकर अगले जन्म में सिद्ध भक्त नरसी मेहता का शरीर धारण किया। यह कथा भक्ति विजय के अध्याय २६ में वर्णित है।

• 卐 •

मन्त्र कम्पनों से विशाल भवन गिरने की सम्भावना

The Practical Yoga[*L. N. Fowler & Co. Ldn.*] पुस्तक में क्रियात्मक अनुभव के आधार पर विद्वान लेखक ने लिखा है "भारतीय संस्कृति और साहित्य में रुचि रखने वाले समस्त पाश्चात्यों का ध्यान 'ओं' के पवित्र शब्द ने अपनी ओर आकर्षित किया है। इस शब्द के उच्चारण से जो कम्पन होते हैं, वह इतने शक्तिशाली हैं कि यदि उन्हें बराबर जारी रखा जाय तो वे एक बड़े विशाल भवन को गिराने की क्षमता रखते हैं। इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है। जब तक कि इसे क्रियात्मक रूप से किया न जाय। परन्तु एक बार अनुभव करने पर इसकी सत्यता की प्रतीति होती है और इसे सुविधापूर्वक समझा जा सकता है। मैंने इन कम्पनों की शक्ति का अनुभव किया है। और पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जैसा मैंने कहा है, इसका वैसा ही परिणाम उपस्थित होगा।

—• •—

जहाँ मन्त्र शक्ति से विशालकाय वृक्ष गिराए जाते हैं

सोलोमन द्वीप के अलावा ग्राम के कुछ लोगों ने, भारत से बाहर अपने प्राचीन परम्परा के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है कि वे स्वर द्वारा स्फूर्त स्पन्दन से बड़े-बड़े विशालकाय वृक्षों को समाप्त कर सकते हैं। इस प्रकार का समाचार आया था कि कुछ वृद्ध ग्रामवासी सूर्योदय से पूर्व ऐसे वृक्ष की ओर रेंग कर जाते हैं और वहाँ जाकर उच्च स्वर स्पन्दित करते हैं। जो वृक्ष ग्राम के लिये हानिकारक सिद्ध होने लगते हैं, उन्हें समाप्त करने के लिये ही यह साधना चलती है। एक मास तक यह प्रक्रिया चलती रहती है वृक्ष पर उस स्पन्द का प्रभाव होने लगता है। पहले उसके पत्ते, फिर शाखायें और फिर पूरा वृक्ष ही गिर जाता है। यह और कुछ नहीं मन्त्रों और समवेत स्वरों के उच्चारण की शक्ति संचार का ही परिणाम है।

सूखा पेड़ हरा हुआ

१९२९ की बात है। डा० भगवानदास ने भारत माता के मन्दिर की संस्थापना करते हुए एक वृहद यज्ञ का आयोजन किया था जो दो सौ दिन तक लगातार चलता रहा। इसमें २० लाख गायत्री मन्त्र का जप भी किया गया। महामना मालवीय जी भी इस कार्य-क्रम में उपस्थित रहे थे। जब कि पूर्ण आहुति के दिन लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि वहाँ के एक सूखे पेड़ में हरियाली आ गयी है। एक दूसरे

वृक्ष में फल लगते हुए भी देखे गये। उपस्थित सन्तों और विद्वानों ने इसे गायत्री मन्त्र का ही चमत्कार बताया।

———
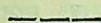
भूत और भविष्य के ज्ञान की सिद्धि

उज्जैन के स्व० ब्रह्मर्षि शिवदत्त जी के एक इन्दौर निवासी मित्र इस प्रकार प्रणव-पूजा करने से जागृत अवस्था में ही भूत और भविष्य की बातों को दैवी वाणी के रूप में सुनने लगे थे, जो बाद में यथार्थ सिद्ध होती थी।

卐—卐
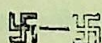
प्रेतात्माओं के आक्रमणों से सुरक्षा

(१)

वाराणसी के श्र. धारादत्त स्वामी वेदान्ताचार्य अपने पितामह श्री कन्हैया लाल के साथ रात के ढाई तीन बजे के लगभग बीकानेर (राजस्थ न) के हनुमानगढ़ ग्राम के निकट एक कुए पर पानी लाने के लिए जा रहे थे। उस समय एक प्रेतात्मा ने श्री धारादत्त शास्त्री पर (जो उस समय बालक ही थे) विभिन्न डरावने वेष धारण करके आक्रमण करने का प्रयत्न किया। कभी शूकर और कभी भैंसे और कभी मनुष्य के रूप में वह आया, पितामह ने उन्हें अपने आगे कर लिया और निर्भय रूप से चलते रहे। वह मनुष्य रूप में काफी देर उनके साथ चलता रहा। बालक तो भयभीत हो रहा था परन्तु पितामह को कोई भय नहीं था जबकि प्रेतात्मा के मुख से लगातार ज्वाला निकल

रही थी। यह घटना चक्र डेढ़ घण्टे तक लगातार चलता रहा परन्तु प्रेतात्मा को उनके निकट आने का साहस न हुआ। बालक धारादत्त ने जब पितामह से इसका कारण पूछा तो पितामह ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि यह गायत्री मन्त्र का प्रभाव है कि वह प्रेतात्मा तुम पर आक्रमण न कर सका। श्री धारादत्त शास्त्री का कहना है कि यह घटना किसी स्वप्न लोक की नहीं है। यह उनकी आंखों की देखी घटना है और पूर्णतया सत्य है। उनके पितामह गायत्री के निष्ठावान उपासक थे और नित्य प्रातः चार बजे से दस बजे तक गायत्री का जाप किया करते थे।

(२)

लक्ष्मणगढ़ के रामानुज कोट की स्थापना स्वामी पुरुषोत्तम आचार्य जी ने की थी जो एक महान विद्वान और सिद्ध पुरुष थे। उनके एक परम शिष्य कलकत्ता में निवास करते थे। उस शिष्य ने एक नया मकान खरीदा जिसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि उस मकान में दुष्टात्माएँ रहती हैं। जो भी उसे खरीदता है वे उसे महान कष्ट देते हैं। जिसने भी उस मकान को खरीदा तीन वर्ष से अधिक कोई भी उसमें नहीं रह पाया। स्वामी जी के शिष्य के साथ भी एक ऐसी अनहोनी घटना घटी कि मकान की मरम्मत कराते समय एक दिन सीढ़ियों से उनका पाँव फिसला और गिर गये। स्वास्थ्य लाभ के लिए दो माह अस्पताल में लगे। उस शिष्य ने स्वामी जी से मकान के बेचने की इच्छा व्यक्त की परन्तु स्वामी जी ने कहा कि ऐसे मौके के मकान सहज में नहीं मिल पाते हैं। सीढ़ियों से फिसलने को दुष्टात्मा का कारण न मान कर एक दुर्घटना भी मानी जा सकती है। स्वामीजी ने उन्हें आदेश दिया कि गीता में अर्जुन ने जो प्रार्थना भगवान से की थी, उसे नित्य कई बार पवित्र हृदय से किया करें। वह प्रार्थना इस प्रकार है।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।। (११।३६)

इसके साथ ही गीता के ग्यारहवें अध्याय के श्लोक ३६ से ४३ तक पाठ नित्य दोनों समय किया करें । तुम्हें इन दुष्टात्माओं का कोई भय नहीं रहेगा और इनसे जो अमङ्गल की सम्भावना दिखाई दे रही है, वह सब नष्ट हो जायगी । उस शिष्य ने यह साधना प्रारम्भ की और काफी समय तक निष्ठापूर्वक करते रहे । इसके बाद उनको कभी कोई कष्ट नहीं हुआ और वह किंवदन्ति भी समाप्त हो गई कि दुष्टात्माओं के कारण उस मकान में तीन वर्ष से अधिक कोई रह नहीं पाता ।

—卐—
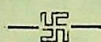
निराश दम्पतियों को पुत्र रत्न की प्राप्ति

(१)

माण्डूक्योपनिषद् की कारिका के रचयिता श्री गौड़पाद के जन्म का श्रेय भी उनके पिता की गायत्र मन्त्री की साधना को ही है । जब उनके पिता कोई सन्तान होने से निराश हो गये तो उन्होंने अन्न जल ग्रहण किये बिना ही एक आसन पर स्थित रहकर सात दिन तक गायत्री मन्त्र का अनुष्ठान किया था ।

(२)

छान्दोग्योपनिषद् (१ । ५ । १-२) में सूर्य को प्रणव कहकर

उनकी ध्यान साधना से पुत्र प्राप्ति का लाभ बताया गया है। कौषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र को एक समय बताया "मैंने इसी आदित्य का ध्यान किया। इससे तू मेरा एक पुत्र हुआ। तू भी जो सूर्य रश्मियों का इस प्रकार ध्यान करेगा तो तेरे अनेक पुत्र होंगे।" जो सूर्य का ध्यान करते हुए प्रणव की साधना करता है, उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है क्योंकि इसी श्लोक में कहा है कि सूर्य भीं प्रणव है, वह गमन करता हुआ ओंकार का ही जप करता है।

(३)

लक्ष्मणगढ़ रामानुज कोट के संस्थापक स्वामी पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज के एक शिष्य के विवाह को सोलह वर्ष व्यतीत हो गये थे, सभी प्रकार की चिकित्सा और उपाय कर लिये परन्तु उनके कोई संतान न हो पाई। एक दिन स्वामी जी से उन्होंने चर्चा की। स्वामी जी ने उनके लिये एक विद्वान ब्राह्मण द्वारा नित्य प्रति वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड के सात सर्गों के पाठ की व्यवस्था की और उस भक्त को आदेश दिया कि वे और उनकी पत्नी प्रातः समय भगवान राम के मन्त्र का जाप और कीर्त्तन किया करें। और इस साधना के बाद दस वर्ष से कम के बच्चों को मक्खन मिश्री का प्रसाद बाँट दिया करें इस साधना का ऐसा चमत्कार हुआ कि डेढ़ वर्ष के बाद उन भक्त के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बाद क्रमशः उनके तीन पुत्र और हुए।

— ● —

सामिग्री का भरपूर प्रयोग होने पर भी कुछ कमी न हुई

(१)

सात वर्ष पहले चिढ़ावा निवासी श्री रङ्गनाथ स्वामी मथुरा

आये थे। एक अध्यापिका अपने अस्वस्थ बालक को उनके पास लाई जिसे यक्ष्मा रोग था। स्वामी जी ने गायत्री पुरश्चरण की प्रेरणा दी। जप के बाद १५०–२०० ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था करनी थी। परन्तु अध्यापिका की इतनी सामर्थ्य नहीं थी। स्वामी जी ने उससे कहा कि वह दो सेर घृत-चून की व्यवस्था कर दे। शेष की व्यवस्था हम स्वयं कर लेंगे। इतनी सामग्री से भोजन बनना आरम्भ हुआ। प्रत्यक्ष दर्शियों का कहना है कि ५०० ब्राह्मणों के भोजन करने के बाद भी सामग्री उतनी ही रही। उसमें कुछ भी कमी नहीं आई। लोगों को विश्वास हो गया कि हजारों ब्राह्मणों के भोजन कर जाने पर भी सामग्री उतनी ही शेष बनी रहती। यह अन्नपूर्णा देवी की सिद्धि का चमत्कार था।

[२]

लगभग २५-३० वर्ष पहले की बात है। अलमोड़ा (उत्तर-प्रदेश) के बसन्तपुर गाँव में श्री १०८ श्री दूधाधारी बाबाजी महाराज के लोगों ने दर्शन किये थे। वे नित्यप्रति कई घण्टे तक गायत्री मन्त्र जाप करते और उसके बाद उसी मन्त्र से हवन करते थे। अन्न उन्होंने त्याग दिया था और एक समय ही फलाहार था दुग्धाहार ग्रहण करते थे। टाट ही उनके वस्त्र थे। इसी को ओढ़ते और पहिनते थे। जिस दिन वे बसन्तपुर आये थे, उनके पास केवल दो सेर हवन सामग्री देखी गई थी अलमोड़ा नगर बसन्तपुर से दूर था। इसलिए वहाँ से सामग्री का सुविधा पूर्वक आना सम्भव भी नहीं था। वे वहाँ एक सप्ताह तक रहे वे नित्य तीन बार हवन किया करते थे। और हर बार के हवन में दो सेर सामग्री का व्यय होता था। लोगों ने गायत्री मन्त्र का यह चमत्कार प्रत्यक्ष रूप से देखा कि वे जब सातदिन के बाद गाँव से जाने लगे तो उनके पास दो सेर हवन सामग्री सुरक्षित बची हुई थी।

बाबा के अनेकों चमत्कार लोगों ने देखे थे। एक बार एक भक्त ने अनुरोध किया कि आज भेंट में कोई भक्त ककड़ी नहीं लाया है।

बाबा ने उत्तर दिया कि अभी ला ही रहा है। लोगों ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि दो मिनट के बाद ही एक भक्त ने बाबा के चरण स्पर्श किये जिसके हाथ में ककड़ी थी। सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा ने अपनी शक्ति से कुछ क्षणों में हमारी इच्छा पूर्ण कर दी।

—★—

चक्षुहीन को देखने की सामर्थ्य मिली

लगभग २०० वर्ष पहले की बात है, मध्य प्रदेश के एक छोटे से गाँव में पण्डित आत्माराम दुबे के घर केदारनाथ नाम के परम भक्त पुत्र ने जन्म लिया था। बाल्यकाल से ही उसके पूर्व संस्कार जाग्रत हो गए थे, और सात आठ वर्ष की अल्पायु में ही वह भगवान की पूजा, अर्चना में रस लेने लगा था। कुछ वर्षों के बाद उसके गाँव के लोग श्री बद्रीनारायणजी की तीर्थ यात्रा से वापस लौटे थे और अपनी यात्रा का विवरण ग्रामवासियों को सुना रहे थे। केदार ने भी उन बातों को रुचि से सुना। उसके मन में बद्रीनाथ की पुनीत यात्रा की इच्छा जाग्रत हुई। परन्तु विवश था। उसने अपने आराध्य देव से प्रार्थना की कि क्या मेरी भी साध कभी पूर्ण हो सकती है? भगवान् का उत्तर उसे उसी क्षण मिल गया कि तुम्हारी लालसा अवश्य पूर्ण होगी?

अगली सर्दियों में गाँव में चेचक का व्यापक रोग फैला। केदार अब बच्चा नहीं था, फिर भी उसे चेचक ने घेर लिया। इससे उसके जीवन की आशा भी नहीं रही थी। केदार स्वस्थ तो हो गया

परन्तु उसे अपने नेत्रों से हाथ धोना पड़ा। चेचक ने उसकी दृष्टि की वलि ले ही ली। उव वह आत्म निर्भर भी न रहा था परन्तु वद्री नारायण के दर्शन की लालसाउसके मन में वरावर वनी हुई थी। हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी कुछ भक्त वद्रीनाथ की यात्रा के लिए तैयार हुए। केदार ने भी उनसे अपने साथ ले चलने की प्रार्थना की यात्री उसे साथ ले चलने को सहमत हो गये और यह विश्वास दिलाया कि वे उसकी लाठी पकड़ कर यात्रा में उसे हर प्रकार का सहयोग देंगे। केदार भी उनके साथ चल दिया। २३ दिन की पैदल यात्रा के पश्चात सभी लोग पैदल पहुंचे। ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला के दर्शन और स्नान करके सभी लोगों ने अगली यात्रा के लिये प्रस्थान किया। नन्द प्रयाग पार करने के वाद वर्षा आँधी और तूफान आरम्भ हो गये सब लोग चट्टियों पर एकत्रित होकर मौसम की सुविधा की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय चारों ओर कुहासा फैल रहा था। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। अकस्मात केदार को ऐसा लगा जैसे कोई लाठी पकड़े उसे यात्रा की तैयारी करने के लिए प्रेरित कर रहा हो। उसने समझा कि गाँव वाले सब चल पड़े हैं। मुझे भी लाठी के सहारे चलना चाहिये, वह चल दिया और चलता ही चला गया। उसकी लाठी का सहारा वरावर कोई न कोई वना ही रहा। इतना लम्वा रास्ता तय करने के वाद उसे किसी प्रकार की थकावट और भूख प्यास न लगी। एक स्थान पर पहुँच कर केदार की लाठी रुक गयी। उसने समझा कि यह विश्राम स्थल आ गया है। वह बैठ गया और थोड़ी देर के वाद उसे नींद आ गयी।

जब मौसम साफ हुआ तो लोगों ने चारों तरफ केदार की खोज की। परन्तु कहीं पता न चला। निराश होकर सभी यात्री आगे चल दिये।

अपने गाँव से यहाँ तक केदार "स्वामी जय वद्रीदेवा" का निरन्तर जप करता रहा था। उसे एक क्षण भी ऐसा स्मरण नहीं जव

उसकी जिह्वा से इस पवित्र मन्त्र का उच्चारण न होता रहा हो। सोने से पहले भी वह इसी मन्त्र का जप करता रहा था। सोकर उठने के बाद उसने एक अद्‍भुत चमत्कार देखा जिस पर उसे सहसा विश्वास न हो पा रहा था। उसने अपने शरीर को बद्री नारायण के विशाल मन्दिर के सामने ही पाया। उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि चेचक महारोग ने जिस दृष्टि को ले लिया था, उसे भगवान बद्री नारायण ने मुझे वापिस दे दिया है। वह अपने चर्म चक्षुओं से भगवान के दर्शन कर रहा था। इसके हर्ष की सीमा न रही। उसका मन गदगद् हो गया। उसे ऐसा लगा कि जैसे अपार प्रसन्नता में वह उछल कूदकर भगवान का गुणगान और कीर्तन कर रहा है। उसकी उछलकूद पृथ्वी तक ही सीमित न रही, आकाश के व्यापक क्षेत्र में भी व्याप रही है। भगवान का वचन और केदार की साध पूरी हुई। गाँव वाले घर लौट गये। केदार वहीं के लिए आया था और वहीं रह गया। सर्दियों में बद्री नारायण मन्दिर के पुजारी मन्दिर को बन्द करके चले जाते रहे परन्तु केदार का शरीर जब तक रहा तब तक केदार शीत ऋतु में भी वहीं रहता रहा। सभी को आश्चर्य था कि केदार किस योग विद्या के बल पर यहाँ रह पाता है। परन्तु केदार को अपने इष्ट मन्त्र पर विश्वास था। उसी के सहारे सर्दियों के मौसम में भी उसने वहाँ रहने की सामर्थ्य प्राप्त की जबकि पक्षी तक अपने घोंसले छोड़कर चले जाते हैं।

(२)

चिड़ावा निवासी श्रीरंगनाथ सरस्वती प्रायः मथुरा आया करते हैं और गोपीनाथ मंदिर में ठहरते हैं। सात वर्ष पहले की घटना है। लोहवन का एक ब्राह्मण रसोइया वहाँ रहता था। वह नेत्र हीन था। स्वामी जी एक भण्डार की व्यवस्था कर रहे थे परन्तु खोज करने पर भी कोई रसोइया न मिल सका। किसी ने उस अन्धे ब्राह्मण

को सूचना दी। स्वामी जी ने कहा कि उसे ही नेत्र दृष्टि मिल जायेगी वही भोजन की व्यवस्था करेगा। स्वामी जी को अन्नपूर्णा देवी की सिद्धि प्राप्त थी। लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि मन्त्रों के प्रयोग से ब्राह्मण भौतिक जगत को स्पष्ट रूप से देखने लगा और उन्होंने २०० ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था की।

—●●—

कटे सिर से मन्त्र ध्वनि होती रही

यह बात उन दिनों की है जब भारत में मुस्लिम शासन का पूर्ण प्रभाव था और हिन्दुओं पर नाना प्रकार के मनमानें अत्याचार किये जाते थे। उस समय बहावलपुर राज्य में एक राम नाम के नैष्ठिक भक्त छिनकू निवास करते थे। उनकी किराना की दूकान थी। व्यापार में वे पूर्ण ईमानदारी और सच्चाई का पालन करते थे। वे सारा दिन भगवद्भजन में लीन रहते। केवल शाम को दो घण्टे के लिए दुकान खोलते थे। उनका यह दैनिक नियम ही था परन्तु एक दिन एक मुसलमान ने यह नियम तोड़ने के लिए वाध्य करना चाहा। वह प्रातः काल उनके पास आया और चाहता था कि उसी समय दुकान खोलकर कुछ सामान दे दिया जाय। परन्तु छिनकू भक्त राम नाम का जप कर रहे थे, उसे शाम को आने के लिए कहा। वह किसी प्रकार न माना और छिनकू व भगवान राम को भी भला बुरा कहने लगा। छिनकू ने उससे केवल यही कहा कि किसों भी धर्म के आराध्य देव को इस प्रकार के अपशब्द नहीं कहने चाहिये। यदि इसी तरह के शब्द तुम्हारे पैगम्बर और धर्म ग्रन्थ के प्रति कहूँ तो तुम्हें कैसा अनुभव होगा। यह सुनते ही मुसलमान को अत्यन्त क्रोध आया और वह छिनकू भक्त क

धमकियाँ देता हुआ चला गया। उसने काजी के पास शिकायत की कि छिनकू ने हमारे पैगम्बर को गालियाँ दी हैं। उसे उचित दण्ड मिलना ही चाहिए। नवाब बहावलपुर छिनकू भक्त से भली भाँति परिचित थे और उनका व्यक्तिगत रूप से सम्मान करते थे। नवाब ने छिनकू भक्त को यह कहलवा भेजा कि उसके ऊपर लगाये गए अभियोग को वह बिल्कुल स्वीकार न करे। परन्तु छिनकू भक्त के जीवन में असत्य भाषण का कोई स्थान नहीं था। उन्होंने जो शब्द उस मुसलमान को कहे थे, वही शब्द अदालत में दोहरा दिये। काजी ने उन्हें संग सार का दण्ड दिया। इस दण्ड का अभिप्राय यह था कि आते जाते व्यक्ति उन्हें पत्थर मारते रहें, जब तक कि उनका शरीरांत न हो जाय। एक खंभे से बांध कर लोग उन्हें पत्थर मारने लगे। सारे शरीर में घाव ही घाव हो गये और रक्त की धारा बहने लगी परन्तु छिनकू भक्त का श्री राम नाम का उच्चारण बन्द नहीं हुआ। शाम को उनके एक परिचित सैनिक से यह दशा न देखी गई तो उसने तलवार से सिर काट दिया। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि छिनकू के कटे हुए सिर से तो श्री राम नाम की ध्वनि हो ही रही थी, काफी देर तक निचले धड़ के भाग से भी श्रीराम नाम की ध्वनि निकलती रही।

व्यापार या नौकरी में सत्य निष्ठा या ईमानदारी का व्यवहार स्वयं एक चमत्कार है, क्योंकि इस पर दृढ़ रहना हर किसी के वश की बात नहीं है। महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार तुलाधार नाम के एक बिना पढ़े लिखे परन्तु ईमानदार व्यापारी को बिना किसी मन्त्र जप किये ऐसी अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं कि उसने मुदगल ऋषि को उनकी साधना की समस्त गुप्त गति विधियों की सूचना देकर चकित कर दिया था।

सत्य निष्ठा को महर्षि पातञ्जलि ने योगदर्शन में एक सिद्धि स्वीकार किया है और यह माना है कि सत्य के पालन से ही इतना

आत्मिक बल अर्जित किया जा सकता है वह व्यक्ति अद्‌भुत कार्य करने की क्षमता वाला है।

साधक की शक्ति का परिचय इस तथ्य से जाना जा सकता है कि वह कितने अंशों में निर्भय है। शक्तिहीन सदैव भयभीत रहता है। जितना २ शक्ति का विकास होता चलता है; उतना ही साधक निर्भय होता है। निर्भयता शक्ति का दूसरा नाम है।

उपरोक्त सभी गुण छिनकू भक्त में थे। वह ईमानदार, सत्यनिष्ठा और निर्भय थे। शरीर की सुरक्षा के लिये वह अपने सिद्धान्तों की बलि देना नहीं चाहते थे। न ही उन्हें अपने शरीर से कोई मोह था। अत्यन्त भीषण कष्ट में भी वह अपने प्रभु का नामस्मरण करते ही रहे। इस घटना का मूल्यांकन किसी भी बड़े चमत्कार से कम नहीं माना जा सकता

जीवन में असाधारण परिवर्तन

रत्नाकर डाकू किस प्रकार से एक लुटेरे से आदि कवि महर्षि बाल्मीकि बना? कहा जा सकता है कि उनके जीवन का यह महान उत्थान मन्त्र शक्ति के ही प्रभाव से हुआ था। ब्राह्मण कुल में तो वे अवश्य जन्मे थे परन्तु उनकी आय का साधन अत्यन्त क्रूर था। अन्याय और निष्ठुरता से धन उपार्जन करके ही वे अपने परिवार का पालन पोषण करते थे। एक बार वनमें यात्रियों को लूट रहे थे। उन यात्रियों म देवऋषि नारद भी सम्मिलित थे। उनसे भी उन्होंने उसी भाषा में ललकार कर अपनी समस्त सम्पत्ति देने के लिये कहा। नारद जी ने निर्भय रूप से मुस्कराते हुए उत्तर दिया कि मेरी सम्पत्ति यह वीणा

ौर करताल ही हैं। उसे प्रसन्नतापूर्वक ले सकते हो। परन्तु एक
ात तुमसे पूछना चाहते हैं कि केवल धन कमाने के लिये इतने क्रूर
ौर निर्मम उपायों का उपयोग क्यों करते हो। लाखों व्यक्ति ऐसे हैं
ो न्यायपूर्ण ढङ्ग से तुमसे अधिक धन उपार्जन कर लेते हैं। परन्तु
ुम्हारा यह कृत्य कोई बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं है क्योंकि तुम्हारी इस
क्रूरता से आए धन का उपयोग तो सारा परिवार करता है परन्तु
इसके दुष्परिणामों को, इन पापों के फलों को, तुम्हें ही भोगना
पड़ेगा। तुम्हारे परिवार का कोई व्यक्ति इसमें सहयोग नहीं
देगा।

रत्नाकर इन बातों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। उन्हें इस
सिद्धान्त के प्रतिपादन से बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस धन का उपयोग
सारा परिवार करता है, उसके कुपरिणामों का भागीदार परिवार
क्यों नहीं होगा ? नारद जी ने कहा कि तुम अपने परिवार के सदस्यों
से पूछ सकते हो। रत्नाकर ने नारद जी को एक पेड़ से बाँध दिया
और स्वयं भागते हुए अपने घर गये। वहाँ पत्नी और बच्चों से पूछा
कि जिस क्रूरता का प्रयोग करके मैं अपार धन तुम्हारे सब के उपयोग
के लिए लाता हूँ उसके दुष्परिणामों के भागीदार भी तुम सब लोग
होगे। पत्नी और बच्चों ने इसके लिए असहमति प्रकट की और स्पष्ट
कहा कि परिवार का पालन तुम्हारा कर्तव्य है इसके लिए उचित अनु-
चित जो भी उपाय तुम अपनाते हो, उसके तुम स्वयं जिम्मेदार रहोगे।
हर व्यक्ति अपने ही कर्मों का फल भोगता है परिवार वालों का स्पष्ट
उत्तर सुनकर रत्नाकर के विवेक की जाग्रति हुई। वे तुरन्त दौड़ते
हुए नारद जी के पास गये, उनसे क्षमा मांगी और पूर्व के कुकृत्यों के
लिए प्रायश्चित का विधान पूछा उसने विशेष प्रकार से अनुरोध किया
कि मैं पाप पङ्क में फँस गया हूँ। मुझे इस गड्ढे से निकालिये और
मेरे जीवन का उद्धार कीजिये। नारद जी ने रत्नाकर को राम नाम

का जप करने का आदेश दिया। वे कुछ पढ़े लिखे तो थे नहीं। कहते हैं कि बहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी जिह्वा राम नाम का उच्चारण न कर सकी। तब नारद जी ने कहा कि तुम राम नाम नहीं कह सकते तो मरा-मरा ही कहो। रत्नाकर ने मरा-मरा कहना आरम्भ किया और उसे निष्ठापूर्वक जपने लगे। दिन, मास और वर्ष बीतते चले गये परन्तु रत्नाकर की साधना अनवरत रूपसे चलती ही रही। यहाँ तक कि दीमकों ने उनके शरीर,पर अपना घर बना लिया। वह उनकी बांबी-बाल्मीकि से घिर गये।

राम नाम का यह अद्भुत चमत्कार देखने में आया कि प्राणियों का वध करके अपने पेट की आग बुझाने वाला क्रूर रत्नाकर डाकू एक दिव्य ऋषि के रूप में परिणित हो गया, उसके सभी पाप कर्म धुल गये। एक बार एक व्याघ्र क्रौंच पक्षी के एक जोड़े में से एक को मारने का प्रयत्न कर रहा था तो दयावश उनके मुख से अनुष्टुप् छन्द निकला। इसीलिये महर्षि बाल्मीकि आदि कवि हुए। गोस्वामी जी ने सत्य ही कहा है—

उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।
जान आदि कवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।।

卐●卐

सर्प विष की निवृत्ति

श्री गोवर्धन पीठ के श्री शंकराचार्य के पूर्वाश्रम का नाम भास्करत्र्यम्बक शास्त्री था। उन्होंने मन्त्र शास्त्र, योग और मन्त्र-शक्ति योग नामक उत्कृष्ट पुस्तक की रचना की थी, उस पुस्तक के १६७ पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है कि राव साहब मागलतदार पहालगढ़ कोल्हापुर वाले गायत्री मन्त्र की शक्ति से सर्प-विष की निवृत्ति की

सामर्थ्य रखते थे और उन्होंने सैकड़ों रोगियों को स्वास्थ्य लाभ कराया था। भारत के हर क्षेत्र में सर्प विष निवारण के मन्त्र-विशेषज्ञ मिल जाते हैं। जो रोगी को सफलता पूर्वक चिकित्सा करने की क्षमता रखते हैं। मथुरा के एक मन्त्र विशेषज्ञ रोगी को चाँटा मारकर सर्प विष उतार देते हैं। सर्प काटे की सूचना यदि उसे फोन पर मिल जाती है तो वह फोन पर ही चाँटा मार कर रोगी को स्वस्थ कर देता है। इस प्रकार अनेकों रोगियों के विष को उन्होंने उतारा है।

卐

अचूक मारण प्रयोगों से भी प्रह्लाद सुरक्षित रहा

दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने अपने राज्य में घोषणा कर दी थी कि राजा भगवान का रूप होता है। अतः स्थूल रूप में उसी की पूजा होनी चाहिये। वह भगवान विष्णु को अपना शत्रु मानता था और विष्णु की उपासना करने वालों को घोर दण्ड देता था। वह नहीं जानता था कि उसके इस अन्याय का विरोध करने वाला उसके अपने शरीर का अंश, उसका पुत्र ही उत्पन्न हो चुका है जिसकी अल्पायु होते हुए भी वह अद्भुत साहस से ओत प्रोत है। हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद जब बालक था तब ही भगवान विष्णु को अपना इष्टदेव मानकर मन्त्र जप किया करता था। जब हिरण्यकशिपु को इस बात की सूचना मिली तो उसने पुत्र को रोकने के लिये हर प्रकार से डराया धमकाया परन्तु जिसे ईश्वर और उसकी शक्तियों पर विश्वास होता है, उसे भू-मण्डल की महानतम शक्तियों से भय कैसे हो सकता है क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास रहता है कि उसका प्रभु सदैव उसके साथ रहकर उसकी सहा-

यता करता है। प्रह्लाद को भी अपने इष्टदेव की शक्तियों पर ऐसा ही विश्वास था तब ही वह निर्भय रूप से अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। वह तो अपने पिता को भी यही प्रेरणा देता रहा कि आप भी भगवान की शरण में जाइये। आप को भी अपने जीवन के उत्थान के लिये भगवान विष्णु का नाम स्मरण करना चाहिये। हिरण्यकशिपु की आँखों के सामने अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ था। उनकी विवेक दृष्टि क्षीण हो चुकी थी और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान लुप्त हो चुका था। उसे भगवान की उपासना कैसे स्वीकार होती। वह तो स्वयं भगवान के आसन पर ही प्रतिष्ठित होना चाहता था। आज तक किसी शरीर धारी का ऐसा स्वप्न न कभी पूरा हुआ है और न कभी पूरा होना संभव हो सकता है। प्रजा तो भयभीत होकर उसके विरोध का साहस ही नहीं कर पाती थी, परन्तु जब अपना पुत्र ही विरोधी हो गया है तो प्रजा के विरोध की भी उसे भावना दिखाई देने लगी। उसने यही विचार किया कि यदि इस एकमात्र बिरोधी वालक को दवा दिया जाय तव ही दूसरे लोग भी दबे रहेंगे।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को वहुत समझाया बुझाया, जब वह किसी प्रकार भी न माना तो निर्दयी पिता ने अपने पुत्र के वध के लिये दैत्यों को आज्ञा दे दी। दैत्यों ने प्रह्लाद पर सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का प्रहार किया। प्रह्लाद निरन्तर भगवान विष्णु का उठते बैठते, चलते-फिरते मानसिक जप करता रहता था। दैत्यों ने अनुभव किया कि प्रह्लाद का शरीर एक ऐसे कवच के समान है जिसको शस्त्र स्पर्श करते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे यह चीनी या हिम के बने हुए हों।

हिरण्यकशिपु किसी प्रकार से भी अपने पुत्र को मारना चाहता था। अतः उसने आज्ञा दी कि प्रह्लाद को ऊंचे शिखर से गिराया जाय। उनका यह दण्ड भी असफल रहा और प्रह्लाद को कोई छोटी चोट भी न आई। उसने ऐसा अनुभव किया जैसे वह फूलों के ढ़ेर पर

हो। इसी तरह से प्रह्लाद को समुद्र में डुबानें का प्रयत्न किया गया। सर्प से कटवाया गया, सिंह और मतवाले हाथी उस पर छोड़े गये। उसे भूख प्यास से मारने का प्रयत्न किया गया। ब्राह्मणों ने कृत्या का अचूक मारण प्रयोग भी किया परन्तु प्रह्लाद को नष्ट करने के सभी प्रयास निष्फल हो गये। उसको केवल मात्र एक आशा रह गयी। उसकी बहिन होलिका को वरदान रूप में एक ऐसा वस्त्र प्राप्त था जिसे ओढ़कर वह अग्नि से सुरक्षित रह सकती थी। होलिका प्रह्लाद को गोद में बिठाकर अग्नि में बैठी, उसे यह आशा थी कि वरदान में प्राप्त वस्त्र के सहयोग से वह स्वयं बच जायेगी और प्रह्लाद जलकर भस्म हो जायगा परन्तु हुआ इसके विपरीत ही। होलिका भस्म हो गई और प्रह्लाद सुरक्षित रहा।

यह घटना प्रेरित करती है कि मन्त्र साधना में अपूर्व शक्ति है और वह बड़ी से बड़ी विपत्ति और संकट में भी साधक का साहस बनाए रखकर उनमें सुरक्षित रहती है।

卐 ● 卐

मन्त्र से अजेय शक्ति की प्राप्ति

राम रावण युद्ध में जब राम की सेना का पलड़ा भारी होनें लगा और रावण को अपनी पराजय का निश्चित आभास होने लगा तो उसने पराजय के कारणों और विजय के उपायों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया। इस विचार और चिंतन से तांत्रिक यज्ञ के अतिरिक्त उसे कोई उपाय सूझ न पड़ा। उसके समझ में केवल यही अन्तिम ब्रह्मास्त्र रह गया। तब उसनें अपने पुत्र मेघनाद को एक बृहद् और अचूक तांत्रिक यज्ञ का आदेश दिया जिससे राम की सेना को परास्त करने की अजेय शक्ति प्राप्त हो सके। मेघनाद ने इस आदेश

को स्वीकार करते हुए निकुम्भिला नामक स्थान में इस तांत्रिक यज्ञ का आयोजन किया । वाल्मीकि रामायण में इसका वृत्तान्त इस प्रकार वर्णित है:—

एतस्तुहुत भोक्तारं हुत भुक्सदृशप्रभः ।
जुहुवे राक्षस श्रेष्ठो विधिवन्मन्त्र सत्तमैः ।।१८।।
सहबिर्लाज सत्कारैर्माल्य गन्ध पुरष्कृतैः ।
जुहुवे पावकं तत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।।२६।।
शास्त्राणि शर पत्राणि समधोथ विभीतकाः ।
लोहिता निचवासांसिस्त्रुवं कार्ष्णायसंतथा ।।२०।।

"यज्ञ स्थल का नाम निकुम्भिला था । अग्नि के समान ओजस्वी मेघनाद नें वहाँ विधि विधान से अग्नि में आहुतियाँ देना आरम्भ किया । राक्षसों ने शेष और प्रभावशाली मेघनाद ने सर्व प्रथम माला और सुगन्धित वस्तुओं की आहुतियाँ दीं, तत्पश्चात खील और चावल से उसे संस्कारित किया, फिर यज्ञीय कर्म का शुभारम्भ किया । मेघनाद ने सारे लाल वस्त्र धारण किये हुए थे । हवन कुण्ड के चारों ओर शस्त्र बिछा दिये थे जहाँ शरतप बिछाने चाहिये । बहेड़े की लकड़ी समिधाओं का प्रयोग किया गया, लकड़ी के बजाय लोहे का स्रुवा बताया गया । मारण कर्म में वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है ।

तस्मिन्नाहूमायनेस्त्रे हूयमाने च पावके ।
सार्व ग्रहेन्दुनक्षत्रं वितत्रास नमः स्थलम् ।।२५।।
सपावकपावकं दीप्ततेजा हुत्वा महेन्द्र मतिक प्रभाव ।
सचापवाणासिरथाश्च शूलः खेतदं धेत्मानमचिन्त्यवीर्यः ।।

जब मेघनाद ने अग्नि में आहुतियां देते हुए कुण्ड के चारों ओर बिछाये हुए अस्त्र शस्त्रों को ब्रह्म मन्त्र से अभिमन्त्रित करना आरम्भ किया, उस समय आकाश मण्डल के सभी सूर्य चन्द्र आदि ग्रह नक्षत्रों में एक महान भय व्याप्त होगया । इन्द्र की तरह प्रतापशाली और अग्नि के तुल्य ओजस्वी अप्रमेय वीर्यसम्पन्न मेघनाद इस तरह

से अस्त्र शस्त्रों को अभिमंत्रित करके अपने धनुष वाण, शूल अश्व और रथ को लेकर आकाश में दृष्टि से ओझल होगया। विभिन्न प्रकार की मायावी क्रियाओं से राम की सेना को भ्रमित करने लगा। उसने माया मन्त्र की शक्ति से नकली सीता का निर्माण किया, और राम की सेना के सामने नकली सीता के वध का दृश्य दिखाकर उन्हें शोका-कुल, चिंतित और भयभीत करने की योजना बनाई। परन्तु विभीषण ने इस मायाचार का भण्डाफोड़ किया और भगवान राम को मेघनाद दुष्ट की संभावित योजना की सूचना देते हुए कहा:—

चैत्यं निकुम्भिलामद्यप्राप्य होमं करिष्यति।
हुतवानुपयातो हिदेवैरपिसवासवैः ।।१४।।
दुराधर्षोभवत्येषसंग्रामे रावणात्मजः।
विघ्न मन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ।।१५।।

—(बाल्मीकि युद्ध० ५८ सर्ग)

"आज निकुम्भिला नामक स्थान पर मेघनाद यज्ञ करेगा। इन्द्र, अग्नि आदि समस्त देवता वहाँ उपस्थित हैं। यदि इस यज्ञ से मेघनाद ने अग्नि को प्रसन्न कर लिया तो इन्द्र और समस्त देवताओं के लिये मेघनाद अजय हो जायेगा, उसे पराजित करना बिल्कुल असंभव होगा। हमें विश्वास है कि अपने अजय होने की कामना को पूर्ण करने के लिये और हमारी सेना के पराक्रमों को विनष्ट करने के लिये ही वह इन मायावी क्रियाओं को कर रहा है।

ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते।
त्यजैनंनरशार्दूल मिथ्यासष्तापमागतम्।।१६।।

मेघनाद का यज्ञ पूर्ण होने से पहले हमारी सेना उसके तांत्रिक को असफल करने के लिए यज्ञ स्थल पर पहुँच ही जानी चाहिये।"

भगवान राम ने विभीषण की इस राय का अनुमोदन किया कि मेघनाद का तांत्रिक यज्ञ विध्वंश करने के लिये तुरन्त व्यवस्था

करनी चाहिये और विभीषण के साथ लक्ष्मण को उनके साथ भेजा वहाँ पहुँचने पर विभीषण लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं:—

सत्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन्परान् ।
अभिद्रवाशुवाद्ध नैतत्कर्मसमाप्यते ।।४।।
(बाल्मीकि रा० युद्ध का सर्ग ८६)

जब तक मेघनाद का यह अभिचारिक यज्ञ चल रहा है, तब तक आप इन्द्र वज्र की तरह वाणों से यज्ञ की सुरक्षा के लिए नियुक्त राक्षसी सेना को त्रसित करते ही रहें।"

जब राक्षसी सेना राम की सेना से यज्ञ की सुरक्षा में असफल रही तो मेघनाद का यज्ञ करना असम्भव हो गया।

स्वमनीक विषण्णतु श्रुत्वा शत्रु भिरर्दितम्
उदतिष्ठत दुर्धर्षः सकर्मण्य न तुष्टिते ।।१४।।

"जब अजेय रावण पुत्र मेघनाद ने यह अनुभव किया कि उसकी सेना शत्रु सेना से यज्ञ को सुरक्षित रखने के लिए असफल हो रही है तो यज्ञ को बिना पूर्ण किए ही वह आसन से उठ बैठा।"

इस तरह से मेघनाद का तांत्रिक यज्ञ अपूर्ण रह गया और वह अजेय शक्ति प्राप्त होने से वंचित रहा।

रामचरित मानस में इस तांत्रिक यज्ञ का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

इहाँ दशानन जागिकर, करै लागि कछु जग्य।
राम विरोध विजय चहु, शठ हठ वश अति अग्य ।।
इहाँ विभीषण सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ।।
नाथ करहि रावण एक जागा। सिद्ध भये नहिं मरहि अभागा ।।
पठवहु नाथ वेगि भट बन्दर। करहिं विधंश आव दशकन्धर ।।
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अङ्गद सब धाये ।।
जग्य करत जब ही सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिशेखा ।।

रण ते निकल भाग घर आवा । इहाँ आइ शठ ध्यान लगावा ॥
अस कहि अङ्गद मारी लाता । चितव न शठ स्वारथ मन राता॥

❀ छन्द ❀

नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन्ह लातन्ह काटहीं।
धरि केश नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं ॥
तब उठे क्रुद्ध कृतान्त सम गहि चरन बानर डारईं।
इहि नीच कपिन्ह विधंस कृत मख देखि मन महुं हारई ॥

रावण को तो यज्ञ की अजेय शक्ति पर विश्वास था ही, मेघनाद भी इस विद्या से भली भाँति परिचित है:—

मेघनाद कै मुरछा जागी । पितहि विलोकि लाज अति लागी ॥
तुरत गयउ गिरवर कन्दरा । करौ अजय मख अस मन धरा ॥
इहां विभीषण मंत्र विचारा । सुनहु नाथ बल अतुल अपारा ॥
मेघनाद मख करइ अपावन । खल मायावी देव नसावन ॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ पाइहि । नाथ वेगि पुनि जीत न जाइहि ॥

जव विभीषण ने राम को तांत्रिक यज्ञ के आयोजन की सूचना दी और उसे विध्वंश करने के लिये प्रेरित किया तो राम ने इस योजना का समर्थन करते हुए आदेश दिया:—

लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु विधंस यज्ञ करि जाई ॥
जाय कपिन्ह सो देखा वैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
कीन्ह कपिन्ह जब यज्ञ विधंसा । जब न उठहि तब करहिं प्रशंसा ॥
तदपि न उठहि धरेन्हि कच जाई । लातन्हि हनि-हनि चले पराई ॥
लै त्रिशूल धावा कपि भागे । आये रामानुज के आगे ॥

बाल्मीक और रामचरित मानस, इन दोनों रामचरित्र प्रधान ग्रंथों से विदित होता है कि यदि मेघनाद का तांत्रिक यज्ञ पूर्ण रूप से सफल हो गया होता और वे यज्ञ की अजेय शक्ति से सुसम्पन्न हो गये होते तो राम की सेना के योद्धाओं और वीरों के सामने मेघनाद को पराजित करना एक बहुत बड़ी समस्या होती और शायद इस

समस्या का कोई सुनिश्चित समाधान ढूंढ निकलना सम्भव भी न होता। उसका परिणाम यह होता कि उस युद्ध में रावण की सफलता और जय जयकार होती, आसुरी और राक्षसी शक्तियों का निरन्तर विस्तार होकर ताण्डव नृत्य होता रहता। इतिहास को एक नई मोड़ मिलती और उसे एक नये ढङ्ग में लिखा जाता जिसमें प्रधानता शक्तियों के साम्राज्यों की ही होती, इसका मुख्य श्रेय मेघनाद द्वारा सफल तांत्रिक यज्ञ को होता। यह यज्ञ की अपार महिमा है जिससे इतनी महान शक्तियों का सृजन किया जा सकता है। वास्तव में यज्ञ की शक्ति मंत्र पर ही निर्भर करती है। यदि इसमें से मंत्र के विधान को निकाल दिया जाय तो यज्ञ अधूरा ही रहता है। और इससे शक्ति की समस्त संभावनायें धूमिल हो जाती हैं। यज्ञ में मन्त्र शक्ति की ही विशेषता रहती है। उपरोक्त घटना में इसी की महिमा वर्णित है।

—❋—
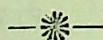
सर्पों का का आवाहन और नाश

महाभारत के आदि पर्व में जनमेजय सर्प यज्ञ की कथा विस्तृत रूप में वर्णित है। ऋषि पुत्र के शाप से तक्षक नाग ने परीक्षित को काटा तो उनके शरीर से प्राण पखेरू उड़ गये। शुकदेव जी से सात दिन की भागवत कथा सुनकर परीक्षित ने तो अपने परलोक सुधार का एक निश्चित मार्ग बना लिया। उन्हें तो ऋषि पुत्र या नाग जाति से कोई द्वेष न था, उन्होंने तो यह समझा कि जैसा कर्म मैंने किया हैं, उसी के अनुरूप फल मुझे मिल गया है। इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं हैं परन्त परीक्षित के पुत्र जनमेजय इस विचार धारा से सहमत नहीं थे। उसके मन में केवल पितृ हत्यारे के विरुद्ध ही नहीं उसकी समस्त जाति के विरुद्ध विद्वेष उद्दीप्त हो उठा। उसने निश्चय

किया कि मैं समस्त नाग जाति को समूल नष्ट कर दूँगा। इस प्रति-शोध की योजना को क्रियान्वित करने के लिए उसने सर्पयज्ञ का सहारा लिया। ऋषियों ने उसे आश्वासन दिया था कि यज्ञ के मन्त्रों में इतनी शक्ति है कि विश्व के हर कोने से सर्पों को आकर्षित करके हवन कुण्ड में भस्म किया जा सकता है। जनमेजय का तांत्रिक सर्प यज्ञ आरम्भ हो गया। इसका वर्णन महाभारत में इस प्रकार से है:—

प्रावृत्य कृष्ण वासांसि धूम्र संरक्त लोचनाः।
जुहुवुमन्त्रवच्चैव समिद्धं जात वेदसम् ॥२॥
कम्पयन्तश्च सर्वेषामुरगाणाम् मनांसि च।
सर्पानां जुहुवुस्तत्र सर्वानग्निस्मुखैस्तदा ॥३॥
—(महाभारत, आ० प०, ५२ वां अ०)

"अभिचारिक कर्म के नियमों का पालन करते हुए ऋत्विज काले वस्त्र ग्रहण किए हुए थे, धुएँ से उनके नेत्र रक्त वर्ण से हो रहे थे। अग्नि में विधि विधान के अनुसार आहुतियाँ दी जाने लगीं उससे प्रभावित होकर सर्पों के मन काँपने लगे।

क्रोश योजन मात्रा हि गोकर्णस्य प्रमाणतः।
पतन्त्यजस्त्रं वेगेन वह्वाग्निमतांवर ॥७॥
एवं शत सहस्त्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।
अबशानि विनिष्टानि पन्नगानां तु तत्र वै ॥८॥

"कथा के अनुसार एक कोस चार की लम्बाई और गोकर्ण जैसी आकृति वाले सोम तीव्र गतिसे आकर्षित हो होकर भस्म होने लगे। इस तरह से सौ, हजार, दसहजार, लाख और अरब की संख्या में सर्प प्रज्वलित अग्नि में भस्म हो गये।

यह घटना बताती है कि प्राचीन काल में ऋषि गण एसे तांत्रिक यज्ञों के विशेषज्ञ होते थे जिनसे शक्ति उत्पन्न करके किसी प्रकार के भी मारण कर्म को सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता था।

पुत्रेष्टि यज्ञों की सफलता मन्त्र शक्ति पर निर्भर करती है

यज्ञ की वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा पुत्र प्राप्ति के अनेकों उदाहरण प्राचीन शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं यज्ञ में औषधियों की शक्ति को प्रस्फुठित करने के लिए अग्नि तत्व का विशेष हाथ रहता है। परन्तु यज्ञ में प्रमुखता मन्त्रों के सस्वर और शुद्ध उच्चारण की ही रहती है। वास्तव में यज्ञ की सफलता मन्त्र शक्ति पर ही निर्भर करती है। यदि यज्ञ में मन्त्रों के विधान को हटा दिया जाय तो यज्ञ औषधियों का अग्नि में जलाना मात्र रह जाता है। निश्चय ही अग्नि में ऐसी शक्ति है कि वह स्थूल तत्वों को सूक्ष्म बनाकर शक्ति में परिणित करने की क्षमता रखती है परन्तु फिर भी यज्ञ की क्रिया मन्त्र के अभाव में अधूरी ही रहती है वास्तव में यज्ञ से शक्ति विस्फोट का प्रधान श्रेय मन्त्र शक्ति को ही जाता है। शास्त्रों में यज्ञ की महान शक्तियों के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं, वह मन्त्र शक्ति के ही चमत्कार मानने चाहिए। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१)

पुत्रेष्टि यज्ञ की सबसे प्रसिद्ध घटना भगवान राम सहित उनके भाइयों के जन्म की है। इसका अभिप्राय यह है कि भगवान राम अपने अवतार का श्रेय मन्त्र शक्ति को ही देते हैं। राजा दशरथ द्वारा आयोजित पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन रामचरितमानस में इस प्रकार किया गया है—

एकबार भूपति मन माँहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरण लागि करि विनय विशाला

शृङ्गी ऋषिहि वशिष्ठ बोलावा। पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चारु कर लीन्हें
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई
तब्रहि राय प्रिय नारि बुलाई। कौशल्यादि तहाँ चलि आई
अर्ध भाग कौशल्याहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर लीन्हा
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्योसो उभयभागपुनि भयऊ
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्हसुमित्रहि मन प्रसन्नकरि
एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुखभारी

वाल्मीकि रामायण में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

धर्मार्थ सहित युक्त श्लक्ष्ण वचनमब्रवीत।
ममता तप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम् ॥८॥

—वाल्मीकि रामायण, अ० ख०, द्वादश सर्ग

'हे ब्राह्मणो! मैं पुत्र अभाव में बहुत ही दुःखी और चिन्तित हूँ, मुझे राज्य से प्राप्त अन्य भौतिक सुविधाओं से कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। मैंने पुत्र की इच्छा से यज्ञ करने का निश्चय किया है।'

ऋषि पुत्र प्रभावेण कामान्प्राप्यामि चाप्यहम् ॥१०॥
तद्यथा विधि पूर्वकं मे क्रतुरेय समाप्यते।
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ॥११॥

'मुझे विश्वास है कि शृङ्गी ऋषि पुत्रेष्टि यज्ञ की क्रिया में निपुण हैं। उनके सहयोग से हमारा यह पुत्र प्राप्ति का आयोजन निश्चित रूप से सफल होगा। आप सब विप्र यज्ञ को विधि पूर्वक सम्पन्न कराने में समर्थ हैं। अतः द्विज गणों से सावधानी पूर्वक यज्ञ कराने की प्रार्थना है ताकि यह पूर्ण रूप से सफल हो जाय।'

जब पुत्रेष्टि यज्ञ विधि पूर्वक सम्पन्न हो गया तो भगवान विष्णु

ने समस्त देवताओं सहित यज्ञ शाला में दर्शन दिये। देवताओं ने भगवान विष्णु से इस प्रकार निवेदन किया—

विष्णोपुत्रत्वमाच्छ कृत्वात्वात्मानं चतुर्विधम्।
तत्र त्वं वानुषो भूत्वा प्रवृद्धम् लोक कण्टकम्॥
—(बा० रा० १५ वाँ सर्ग १ श्लोक २१)

"हे प्रभो! आप पुत्र रूप में प्राप्त हों। आप अंश सहित चार विभागों में विभक्त हों और राजा दशरथ के चार पुत्रों के रूप में स्थूल देह धारण करना स्वीकार करें। लोक कण्टक को नष्ट करने के लिए इस समय आपका मनुष्य शरीर धारण करना आवश्यक है।"

भगवान विष्णु ने देवताओं के निवेदन को स्वीकार किया और—

पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृप॥८॥
—(बा० रा०; १६ सर्ग)

"राजा दशरथ को भगवान ने पिता भाव में स्वीकार किया और देवताओं को इस स्वीकृति की सूचना दे दी।"

सचाप्य पुत्रो नृपतिस्तस्मिन्काले महाद्युतिः।
अयजत्पुत्रियमिष्टि पुत्रेप्सुररिसूदनः॥६॥
सकृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्॥१०॥
—(बा० रा० १६ वाँ सर्ग)

"जब महातेजस्वी राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया, तब भगवान विष्णु ने उनके पुत्रों के रूप में अवतरित होने का दृढ़ निश्चय किया।"

कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत।
नयेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तम॥५६।
—(बा० रा० आदि काण्ड १४ सर्ग)

"हे सुव्रत आप ऐसा अनुष्ठान करें जिससे मेरी वंश परम्परा रहे। शृङ्गी ऋषि ने अपनी स्वीकृति देते हुए कहा कि—

भविष्यन्ति सुता: राजश्चत्वारस्ते कुलोद्वहा: ॥६०॥

"हे राजन् ! निश्चय रूप से तुम्हारे चार पुत्र रत्न होंगे जो वंश की वृद्धि करेंगे ।"

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम् ।
लब्ध संज्ञास्तस्तं तु वेदज्ञो नृपमऽब्रवीत् ॥१॥
इष्टि तेहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्र कारणात् ।
अधर्म शिरसि प्रौक्तैर्मन्त्रै सिद्धां विधानत: ॥२॥

–(बा० रामायण ६५ सर्ग)

"इसके वाद वुद्धिमान और वेद विद्या विशेषज्ञ शृंगी ऋषि कुछ समय तक गम्भीरता पूर्वक विचार करते रहे। फिर स्थिर वाणी में राजा दशरथ को सम्बोधित करते हुए बोले "राजन् ! पुत्र की प्राप्ति के लिए अथर्व वेद में जिन मन्त्रों का विधान उपलब्ध होता है, उनकी सिद्धि करके मैं आपका पुत्रेष्टि यज्ञ सफलता पूर्वक सम्पन्न करूँगा और आपकी मनोकामना पूर्ण होगी ।"

इतिहास साक्षी है कि शृङ्गी ऋषि के नेतृत्व में आयोजित राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुआ और उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। इससे लगता है कि मन्त्र-शक्ति के प्रभाव ने भारत के इतिहास को ही बदल डाला । यदि यह आयोजन सफल न होता और राम का उद्भव न हुआ होता तो क्या पता रावण के अत्याचार किस सीमा तक बढ़ते चले जाते और भारतवर्ष का इतिहास क्या रूप धारण करता ।

(२)

भागवत में श्रीशुकदेव जी ने मनु जी की वंश परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है–

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत ।
सम्वर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिर:सुत: ॥२६॥

मरुत्तस्य यथायज्ञो न तथा न्यस्य कश्चन ।
सर्वं हिरण्यं त्वासीद्यत्किञ्चिच्चास्य शोभनम् ।।२७।।
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभि द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ।।२८।।

–(भागवत, नवाँ स्क०, द्वि० अ०

'करन्धम के पुत्र अवीक्षित, अवीक्षित के पुत्र मरुत जी चक्रवर्ती राजा के रूप में सफल राज्य कर चुके हैं, जिनको अङ्गिरा के पुत्र सहयोगी सम्वर्त्त ने यज्ञ सम्पन्न कराया था। ऐसा कहा जाता है कि प्रसिद्ध में मरुत के यज्ञ के सामने सभी यज्ञ फीके पड़ गये थे। उनके यज्ञ में सभी स्वर्ण के पात्रों का प्रयोग किया गया था। इनके यज्ञ में स्वयं इन्द्र का आगमन हुआ था, उन्हें सोमपान समर्पित किया गया था जिससे वे अत्यन्त हर्षित हुए थे। ब्राह्मणों को भी संतोषजनक दक्षिणा दी गई थी जिससे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक विदाई ली थी। इसमें मरुत गणों का कार्य परोसना था और विश्वेदेवगण सभासद के रूप में उपस्थित हुए थे।'

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वशिष्ठो भगवान्किल ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ।।१३।।
तत्र श्रद्धा मनोः पत्नीं होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ।।१४।।

–(भा०, न० स्क०–प्र० अ०)

'इक्ष्वाकु आदि पुत्रों के पहले मनु जी के कोई सन्तान नहीं थी। अतः महर्षि वसिष्ठ ने अपने मित्रावरुण के यज्ञ का आयोजन किया। मनु की पत्नी श्रद्धा ने उस यज्ञ में पयोव्रत धारण किया था और आहार में केवल दूध लेकर ही अनुष्ठान कर रही थी। उन्होंने होताओं को प्रणाम करके निवेदन किया कि आप ऐसा यज्ञ सफल करें, जिससे मुझे कन्या की प्राप्ति हो।'

होताओं ने विधि पूर्वक यज्ञ किया जिसके प्रभाव से 'इला' नाम की विदुषी कन्या उन्हें प्राप्त हुई थी। इससे स्पष्ट है, कि मन्त्र-शक्ति से इच्छानुसार पुत्र या पुत्री की उत्पत्ति की जा सकती है।

(३)

भागवत में युवनाश्व की घटना इस प्रकार वर्णित है—

भार्या शतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः।
इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहितः ।।२६।।
राजा तदज्ञ सदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः।
दृष्ट्वा शयानान् विप्रास्तान् पपौ मन्त्र जलं स्वयं ।।२७।।
उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो।
पप्रच्छुकस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ।।२७।।
राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैव बलं बलं ।।२६।।

—भाग० न० स्क० ष० अ०

'युवनाश्व की सौ पत्नियों में से किसी के भी सन्तान नहीं थी। इसलिए वे बहुत चिन्तित रहते। राजा के इस दुःख से ऋषियों को उस पर दया आई। उन्होंने 'इन्द्र दैवत्व' नामक यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ कई दिन तक चला। राजा यज्ञ में दीक्षित होकर यज्ञस्थल के समीप ही विश्राम करता था। एक रात उसे प्यास लगी जिसे वह सहन न कर सका। उस समय होतागण सब निद्रावस्था में थे। प्यास से युवनाश्व की व्याकुलता बढ़ रही थी, अतः उसने यज्ञशाला में प्रवेश किया। जो जल राजा की पत्नी के लिए सुरक्षित रखा गया था, वह जल राजा ने पी लिया। जब ऋत्विज गण प्रातःकाल उठे तो कलश में जल को न पाकर आवश्यक पूछताछ की, कि पुत्र उत्पन्न करने वाला जल किसने पी लिया, जब यह पता चला कि ईश्वरीय प्रेरणा से राजा ने ही ऐसा किया है तो उनके मुख से अकस्मात यह शब्द

निकले कि भाग्य बड़ा बलवान है। पुरुष की शक्ति उसके सामने कुछ भी नहीं है।

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम्।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ।।३०।।
—(भा० न० स्क०, ६ अ०)

पुत्र उत्पन्न करने वाला जल पीकर राजा ने गर्भ धारण किया। जब गर्भ परिपक्व हो गया तो समय पूर्ण होने पर युवनाश्व की दक्षिण कुक्षि से मान्धाता का पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसमें चक्रवर्ती के सभी लक्षण विद्यमान थे।

यह घटना वैज्ञानिक दृष्टि से अप्राकृतिक सी लगती है और इस पर सहज में विश्वास भी नहीं किया जा सकता। इसका यही भाव ग्रहण करना पर्याप्त है कि पुत्र प्राप्ति के यज्ञीय कर्मकाण्ड में मन्त्र शक्ति का निश्चित और अचूक प्रभाव रहता है।

(४)

भागवत में राजा अङ्ग को पुत्र प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक्स्थितम्।
अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदि हेदृक्त्वमप्रजः ।।३०।।
तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप।
इष्टते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ।।३२।।

"राजा के सभासदों ने उनसे निवेदन किया कि जहाँ तक हमारी जानकारी है, इस जन्म में तो आपने ऐसा कोई पाप नहीं किया है जि के परिणाम स्वरूप दैवी विधान ने आपको निःसन्तान रखा हो परन्तु यह सम्भव हो सकता है कि पूर्व जन्म में आप से कुछ ऐसे पाप हो गये हों जिनके कारण आपको पुत्र हीन रहना पड़ रहा है। इन परिस्थितियों में हमारी राय यह है कि आपको पुत्र प्राप्ति की साधना

करनी चाहिए। श्रद्धा पूर्वक अपनी इच्छा लेकर आप यज्ञ भगवान का आयोजन करेंगे तो वे प्रसन्न होकर आपको निश्चित रूप से पुत्र होने का आशीर्वाद देंगे।

राजा अङ्ग को ऋषि इस प्रकार सम्बोधित कर रहे हैं—

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः।
यद्यज्ञ पुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥३३॥
तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः।
आराधितो यथैवैषां तथा पुंसां फलोदयः ॥३४॥
इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये।
पुरोडाशं निरवपच्छिवि विष्टाय विष्णवे॥३५॥
तस्मात् पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलांवरः।
हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥३६॥

—(भागवत, च० स्क० १३ अ०)

"पुत्र प्राप्ति की इच्छा से जब आप यज्ञ भगवान की उपासना करेंगे तो उस यज्ञ में यज्ञ भगवान के सहित देवता स्वयं ही आ जायेंगे और अपना भाग ग्रहण करेंगे। भगवान तो साधक की भावना के अनुसार ही फल दिया करते हैं। साधक जिस कामना को लेकर यज्ञ भगवान का भजन करता है, भगवान उसकी वह कामना निश्चित रूप से पूर्ण करते हैं। जब राजा ने ऋषियों से ऐसा सुनिश्चित विचार सुनाया तो यज्ञ भगवान की प्रसन्नता के लिए पुरोडाश के यज्ञ का संकल्प किया। जब पुरोडाश का यज्ञ भगवान विष्णु को प्राप्त हुआ तो उसी यज्ञ कुण्ड से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ जो श्वेत वस्त्र धारण किए हुए था, सोने का हार पहने था, उसके हाथ में एक सोने का थाल था जिसमें खीर रखी थी। इस दिव्य पुरुष का सभी ने दर्शन किया।

सविप्रानुमतो राजा गृहीत्वाञ्जलिनौदनम्।
अवघ्राय मुद्रायुक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥३७॥

सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यत्वै पत्युरादधे।
गर्भंकालं उपावृत्ते कुमारं सुषुबेऽप्रजा ॥३८॥

—भागवत

'खीर को ग्रहण करने के लिए राजा ने ऋषियों से अनुमति ली तब उस दिव्य पुरुष के हाथ से खीर लेकर प्रसन्नता पूर्वक सूँघकर रानी को सेवन के लिए दिया।'

रानी ने दिव्य पुरुष की प्रदान की हुई खीर को ग्रहण करके समय पाकर गर्भ को धारण किया। उसके परिपक्व होने पर उसे एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ।

(५)

भागवत पुराण में राजा चित्रकेतु के पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन इस प्रकार है—

इत्यर्थितः स भगवान् कृपालु र्ब्रह्मणः सुतः।
श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥२७॥
ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत।
नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्विजः ॥२८॥

—भागवत पुराण, छ० स्क० १४ अ०

'जब राजा चित्रकेतु ने अङ्गिरा ऋषि से निवेदन किया तो ब्रह्मा पुत्र परम कृपालु अङ्गिरा ने शीघ्र ही त्वाष्ट्र चरु को सिद्ध किया, राजा ने त्वष्टा की पूजा का आयोजन किया। हे भारत! जब यज्ञ पूर्ण हो गया तो राजा की रानियों में से सर्वश्रेष्ठ रानी कृतद्युति को अङ्गिरा ऋषि ने यज्ञ का शेष अन्न गाने को दिया।'

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत्।
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मजम् ॥३०॥
अथकाल उपावृत्ते कुमारः समजायत।
जनयञ्छूर सेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३१॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः।
वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयमास जातकम् ॥३२॥

'यज्ञ के शेष अन्न को ग्रहण करके चित्रकेतु की महारानी कृतद्युति ने चरु को उसी प्रकार धारण किया जिस प्रकार कृत्तिका ने अग्नि की आतमा को धारण किया था। इसके पश्चात जब गर्भ परिपक्व हो गया तब राजकुमार की उत्पत्ति हुई। जब राजा के पुत्र उत्पन्न होने का समाचार देश भर में फैला तो सूरसेन देश निवासियों को अपूर्व हर्ष की प्राप्ति हुई। चित्रकेतु ने जब पुत्र उत्पत्ति का समाचार सुना तो वे हर्षोल्लास के सागर में डूब सा गया। उसने शान्त चित्त से स्नान, सन्ध्या और ईश्वर का स्मरण किया, इस प्रकार से पवित्र होकर स्वच्छ वस्त्रों को धारण करके उसने विधि विधान से विप्रों से आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात पुत्र का जातकर्म संस्कार विधिपूर्वक किया।'

यह शास्त्रीय घटना पुत्रेष्टि यज्ञ की सफलता की पुष्टि करती है जिसका मुख्य श्रेय मन्त्र शक्ति को ही है।

(६)

विष्णु पुराण में भारत के पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

ततोऽऽस्य वितथे पुत्र जन्मनि पुत्रार्थिनी मरुत्सोम याजिनो दीर्घ तपसः पाष्यर्य पास्ताद वृहस्पति वीर्यादुतथ्य पत्न्यां मततायां समुत्पन्नो भरद्वाजख्यः मरुद्भिर्दत्तः ॥१६॥

....विष्णु पुराण, च० अ० ज० १६

'जब अनेकों प्रयत्न करने पर भी सन्तान प्राप्ति में सफलता प्राप्त न हुई तो भरत ने पुत्र की इच्छा से मरुत्सोम नामक यज्ञ का आयोजन किया। जब यज्ञ सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया तो मरुद्गणों ने उन्हें भरद्वाज नामक पुत्र प्रदान किया। भरद्वाज की

उत्पत्ति बृहस्पति के वीर्य और ममता के गर्भ से हुई थी।"

ये सारी घटनायें इस बात का सुनिश्चित प्रमाण हैं कि जिस स्त्री के सन्तान न होती हो, उसके गर्भ की शुद्धि व पुष्टि करके यज्ञ व मन्त्रों के सहयोग से उनके बाँझपन की निवृत्ति की जा सकती है। यह शास्त्रीय सत्य घटनायें इस तथ्य के समर्थन में पर्याप्त हैं।

—卐—
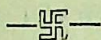
जब मन्त्र-शक्ति से इन्द्र का आवाहन किया गया

भागवत पुराण में वर्णित कथा के अनुसार राजा वेन एक नास्तिक शासक था। उसे ईश्वरीय शक्तियों पर बिलकुल विश्वास नहीं था। उसके स्वयं का तो ईश्वर पूजन भजन और ध्यान आदि साधनाओं का कोई प्रश्न ही नहीं था, वह अपनी प्रजा को भी साधना करने से रोकता था। उसके राज्य में ईश्वर का स्मरण पूजन एक प्रकार से अपराध था और ईश्वर भक्तों को इसका दण्ड भुगतना पड़ता था। उसका यह विश्वास था कि राजा ही समस्त देवताओं का प्रतिनिधि होता है, उसके पूजन से ही समस्त देवताओं का पूजन हो जाता है। ऋषि वेन की इस नास्तिकता पूर्ण विचारधारा और आज्ञा का विरोध करते हैं और उसे बार बार समझाते हैं—

तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम्।
यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन् स्वदेशाननुरोद्धु मर्हसि ॥२१॥
यज्ञेन युष्मद्विषयेद्विजातिभिर्वितायमानेनसुराः कला हरेः।
स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर
चेष्टितुम् ॥२२॥

—(भागवतमहापुराण, च० स्क०, अ० १४)

'हे राजन् ! समस्त लोकों और देवताओं का यज्ञ में निवास रहता है। ईश्वर वेदत्रयीमय द्रव्यमय और तपोमय हैं। ऋषि समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञों से विधि विधान पूर्वक यजन करते हैं। आपको तो इन यज्ञों का संरक्षक होना चाहिए और इनके सम्पन्न करने के लिए सहयोग देना चाहिए। आपके राज्य में निरन्तर यज्ञ आयोजन होते रहेंगे तो देवता उनसे प्रसन्न होकर सभी प्रजाजनों की मनोकामनायें पूर्ण करेंगे। अतः आपको इन यज्ञों का विरोध करना उचित नहीं है।'

वेन के मस्तिष्क में यज्ञों के विरोध की नास्तिक विचार धारा इस चरम सीमा तक प्रविष्ट हो चुकी थी कि उसका शुद्धीकरण ऋषियों के लिए असम्भव हो गया। उसने ऋषियों की योजनाओं का किसी प्रकार भी समर्थन न किया बल्कि शक्ति भर यज्ञों का विरोध ही करता रहा और उन्हें दवाता रहा। जब ऋषियों को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि वेन किसी प्रकार भी हमारी उचित वातों को मानने के लिए तैयार नहीं है तो उन्होंने शाप देकर राजा को मार डाला ऋषि राजा वेन से व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि उसके कुकर्मों के विरोधी थे। अतः उन्होंने वेन की भुजाओं का मन्थन किया। उस मन्थन से पृथु की उत्पत्ति हुई। ऋषियों ने आरम्भ से ही पृथु के मानसिक क्षेत्र को इस प्रकार से सुसंस्कृत किया कि उसके मन में आस्तिक विचारधारा जमी। वह स्वयं ईश्वर भक्त बना प्रजा में इस विचार धारा को 'प्रसारित करने का संकल्प लिया और राष्ट्रीय विकास के लिए निरन्तर यज्ञों का आयोजन करने लगा।

अथादीक्षत राजा तु हयमेध शतेन सः।
ब्रह्मावर्त्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१

—भागवत, चौ० स्क० अ० १९

'जहाँ पश्चिम वाहिनी सरस्वती प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा

और मनु का ब्रह्मवैवर्त क्षेत्र है, वहां राजा पृथु ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों के आयोजन का निश्चय किया। विधि पूर्वक किए जाने के कारण इन यज्ञों की सफलता सुनिश्चत थी, सभी को यह विश्वास हो गया कि इन यज्ञों से जिन महान शक्तियों का उद्भव होगा, उनसे राजा पृथु अजय हो जायेंगे। उनकी शक्तियाँ निरन्तर विस्तृत होती रहेंगी। संसार में किसी भी शक्तिशाली साम्राज्य के लिए उन्हें पराजित करना सम्भव न होगा। इस सम्भावना से प्रेरित होकर इन्द्र को मानसिक भय होने लगा कि यदि पृथु के सौ यज्ञ सफल हो गए तो मेरा इन्द्र पद पर रहना सम्भव नहीं हो सकेगा।

तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः।
शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञ महोत्सवम् ॥२॥
यत्र यज्ञपतिः साक्षाद् भगवान् हरिरीश्वरः।
अन्व भूयत सर्वात्मा सर्वलोक गुरुः प्रभुः ॥३॥
अन्वितो ब्रह्म शर्वाभ्यां लोकपालैः सुहानुगैः।
उपगीयमानो गन्धर्वैमुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥४॥
सिद्धा विद्याधरा दैत्या दानवाः गुह्यकादयः।
सुनन्दनन्द प्रमुखा पार्षदप्रवरा हरेः ॥५॥
कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः।
तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥६॥

"जब इन्द्र को संदेह हुआ कि जब राजा पृथु के १०० यज्ञ पूर्ण हो जायेंगे तो मुझे इन्द्रत्व के आसन से विहीन होना पड़ेगा तो उसे यह धार्मिक आंयोजन सहन नहीं हुआ। उस यज्ञ की सफलता इसी तथ्य से स्पष्ट है कि समस्त प्राणियों के आत्मा और गुरु यज्ञपति भगवान् विष्णु ने साक्षात दर्शन दिये थे। उनके साथ शिव ब्रह्मा सर्वलोकपाल और उनके सहयोगी भी थे। मुनि गंधर्व गण सभी उनकी कीर्ति का बखान कर रहे थे, दैत्य दानव सिद्ध विद्याधर,नन्द सुनन्द, सनका-

दिक नारद दत्तात्रेय कपिल और जिनका मन भगवत पूजन में लीन था, वे सभी वहाँ आये थे ।"

यत्र धर्मादुघा भूमि: सर्वकामदुघा सती ।
दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ।।७।।
ऊहु:सर्व रसान्नद्य: क्षीरदध्यन्न गोरसान् ।
तरवो भूरि वर्ष्माण: प्रासूयन्त मधुच्युत: ।।८।।
सिन्धवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ।
उपायनमुपाजह्नु: सर्वेलोका:सपालका: ।।९।।
इतिचाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ।
असूयन्भगवानिन्द्र: प्रतीघातमचीकरत् ।।१०।।

"हे भारत ! जहाँ समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले पृथ्वी रूपी गौ राजा पृथु के समक्ष सदैव उपस्थित रहती है, वहाँ अभाव का प्रश्न ही क्या हो सकता है ? गोरस क्षीर दधि और अन्य रसों की उनके शासन काल में जैसे नदियाँ ही प्रवाहित होने लगीं। फल देने वाले पेड़ असंख्य फल देते रहते, सिन्धुओं ने असंख्य रत्न राशि से स्वागत किया । पर्वतों ने चार प्रकार की भोजन सामग्रियाँ—भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य प्रदान की। लोकपालों ने श्रेष्ठ हार प्रदान किए। जहाँ स्वयं भगवान् विष्णु संरक्षक के रूप में उपस्थित हों, उनके भाग्य की सराहना कौन नहीं करेगा। पृथु के राज्य की इस प्रकार से प्रगति देखकर इन्द्र से उनकी उन्नति सहन न हो सकी। उसके मन में ईर्ष्या और द्वेष ने प्रवेश किया । उसने ऐसी योजनाएँ क्रियान्वित करने का विचार किया जिससे पृथु का यज्ञ असफल हो जाय ।

इन्द्र ने अपनी योजना को इस प्रकार से मूर्त रूप दिया कि जब पृथु का सौवां अश्वमेध यज्ञ हो रहा था तो इन्द्र ने अपना वेष बदलकर घोड़े को चुरा लिया । किन्तु यज्ञ के आयोजक सतर्क थे । पृथु

के पुत्र ने इन्द्र का पीछा किया और घोड़े को वापस ले आये। किसी तरह से इन्द्र अपनी जान बचाकर भागा। इन्द्र का यह कुकृत्य यहीं तक सीमित न रहा। उसने इसकी पुनरावृत्ति की और छद्म वेष में घोड़े को पुनः चुराया। पृथु के पुत्र ने पुनः घोड़ा छुड़ा लिया। जब पृथु ने देखा कि इन्द्र को हमारे यज्ञ की सफलता किसी प्रकार भी सहन नहीं हो पा रही है और उसमें विघ्न डालने के लिए वह नीच से नीच कर्म करने को तैयार है तो उसने सोचा कि ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति का नाश करना ही उचित है। उसने धनुष पर अपना भयंकर बाण चढ़ाया ताकि उनको कुछ ही क्षणों में धराशायी कर दे। ऋषियों ने जब यह दृश्य देखा तो पृथु से कहने लगे।"

वयं मरुत्वंतमिहार्थ नाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम्।
अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजन्जुहवाम तेऽहितम् ।।२८

—भागवत चौ० स्क० अ० १६

"हे नृपेन्द्र! यदि आप इन्द्र को मारना ही चाहते हैं तो आपके इस भयंकर बाण से केवल इन्द्र ही नहीं सारा देवलोक ही नष्ट हो जायेगा। आपके यज्ञ में विघ्न डालने वाले आपके यश को न सहन करने वाले मङ्गल कामनाओं को नष्ट करने वाले इन्द्र को हम यज्ञ के शक्तिशाली मन्त्रों से आकर्षित करके यज्ञ कुण्ड में भस्म कर सकते हैं।

वास्तव में वेद मन्त्रों में ऐसी शक्तियाँ हैं जिनके माध्यम से इन्द्र जैसे प्रभावशाली राजा का उनके सहयोगियों सहित आवाहन करना और यज्ञ कुण्ड में भस्म करना सम्भव है। ऋषियों ने पृथु को कोई असम्भव सुझाव नहीं दिया था परन्तु मन्त्रों की वास्तविक शक्ति का रहस्योद्घाटन किया था। ऋषियों ने जो कुछ कहा था, उसे करके भी दिखा दिया। इन्द्र को अपनी हार माननी पड़ी।

इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा।
स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभू प्रत्यषेधत ।।२९।।

—भागवत, चतुर्थ स्कन्ध अ० १६

जब ऋषियों ने पृथु को यह आश्वासन दिया कि वे इन्द्र का यज्ञ के मन्त्रों से आवाहन कर सकते हैं तो पृथु ने यह सङ्कल्प किया कि जब तक आपके द्वारा उच्चारण किए हुए यज्ञीय मन्त्रों की शक्ति से आकर्षित होकर धर्म विरुद्ध कार्य करने वाले इन्द्र मेरे समक्ष हवन-कुण्ड में भस्म नहीं हो जाते, तब तक ये धनुष मेरे हाथ में ही रहेगा ताकि यदि यज्ञीय मन्त्रों से उसका नाश न हो सका तो इस धनुष के प्रयोग से उनको निश्चय रूप से यमपुर पहुंचाऊँगा क्योंकि उस दुष्ट ने बिना किसी कारण के मेरे यज्ञ को असफल करने का प्रयास किया है।

तत्पश्चात् पृथु के उद्देश्य को पूरा करने के लिए ऋषियों ने अपने हाथों में श्रुवा लिए और इन्द्र को लक्षित करके यज्ञ-कुण्ड में आहुतियाँ देना आरम्भ किया। ऋषियों की वाणी सत्य हुई यज्ञ के मन्त्र शक्ति से आकर्षित होकर इन्द्र यज्ञ स्थल की ओर खिचा चला आया। इन्द्र ज्योंही अग्नि कुण्डमें भस्म होने वाला था तब ही अकस्मात ब्रह्मा जी आ गए। इन्होंने इन्द्र को क्षमा करने की प्रार्थना की, भगवान विष्णु ने भी इसका समर्थन किया। पृथु ने इन्द्र को क्षमा कर दिया।

यह घटना वास्तव में सत्य हो सकती है या नहीं, समालोचना करना व्यर्थ है। इससे निश्चित रूप से यह आभास तो मिलता ही है। यज्ञ में उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों में अपूर्व शक्ति होती है। उनसे स्थूल शरीर को नहीं तो उसके व्यक्तित्व व उस व्यक्ति के प्रतीक विचारों को आकर्षित करके उनमें परिवर्तन अवश्य लाया जा सकता है, उन्हें हर प्रकार से आकर्षित किया जा सकता है। कुछ भी हो मन्त्र शक्ति पर अविश्वास नहीं किया जा सकता।

—卐—

राजा बलि की विश्व विजय की योजना सफल हुई

भगवत में राजा बलि की विश्व विजय की गाथा इस प्रकार वर्णित हैं—

तं ब्राह्मणा भृगव: प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिताभिनाकम् ।
जिगीषमाणंविधिनाभिषिच्च महाभिषेकेण महानुभावा: ।।४।।
ततो रथ: काञ्चनपट्टरद्ध हयाश्चर्यश्चतुरगवर्णा: ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशना दास हविभिरिष्टान् ।।५।।
—(भाग०, अ० स्क०, अ० १५)

"राजा बलि ने विश्व विजय के लिए शुक्राचार्य आदि भृगुवंशी ब्राह्मणों को एक महान यज्ञ के सम्पादन के लिए निमन्त्रित किया । बलि के आतिथ्य से वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए । बलि के यज्ञ का लक्ष्य स्वर्ग पर विजय प्राप्त करना था । ब्राह्मणों को जब यह पता चला तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । विधि विधान के अनुसार महाभिषेक किया गया और विश्वजित् यज्ञ विधि से होने लगा । जब पर्याप्त संख्या में आहुतियाँ दी जा चुकी थीं तो सभी उपस्थित जनों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि यज्ञ कुण्ड में से सोने के पट से बँधा हुआ एक रथ इन्द्र के घोड़ों की तरह हरे रङ्ग के घोड़े और एक ध्वजा जिस पर सिंह का चित्र अङ्कित था, निकले ।

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्ध तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लान पुष्पां जलजं च शुक्रं ।।१६।।

"इनके अतिरिक्त एक दिव्य धनुष जो सोने के बंधों से बँधा हुआ था । अक्षय बाणों से भरपूर दो तूण और दिव्य कवच भी उनके साथ थे जब बलि को यज्ञ भगवान से यज्ञ की सफलता के परिणामस्वरूप यह वस्तुएँ प्राप्त हुई तो बलि के पितामह भक्त प्रह्लाद ने

आरम्भिक सफलता की खुशी में एक ऐसी माला भेंट की, जिसके पुष्प कभी मुरझाने वाले नहीं थे। शुक्राचार्य ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए एक शङ्ख दिया।

जब बलि को यह आश्वासन हो गया कि यज्ञ भगवान की कृपा से अब वह अपार शक्तियों से सुसज्जित है तो उसका साहस बढ़ा। उसने अपनी सेना को एकत्रित किया और योजना बद्ध रूप से इन्द्र लोक पर चढ़ाई कर दी। देवता आश्चर्यचकित थे कि बलि को ऐसा दुःसाहस कैसे हुआ ? बलि की शक्तियों की जब नाप तोल की गई तो देवताओं ने अनुभव किया कि इस समय बलि इतना-शक्तिशाली है कि किसी प्रकार भी उसका सामना किया जाना सम्भव नहीं है। इस समस्या के समाधान के लिए देवताओं ने गुरु बृहस्पति से निवेदन किया कि यज्ञ के कारण बलि की शक्तियाँ बहुत बढ़ी हुई हैं। इसलिए बिना युद्ध किए ही हार मानने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। बृहस्पति के आदेश को स्वीकार कर देवताओं ने स्वर्ग को छोड़ दिया और बलि स्वर्ग के शासक हो गये।

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वै रोचनः पुरीम्।
देव धनीमधिष्ठाय वषं निन्ये जगत्त्रयम्॥
त विश्वजयनं शिष्यं भृगवः शिष्य वत्सलाः।
शतेन हयमेधाना मनु व्रत मया जयन्॥

—(भा० स्क०, ८, अ० १५, श्लोक ३३-३४)

"यज्ञ से उत्पन्न बलि की शक्तियों का अनुमान करके जब देवता स्वर्ग से चले गये तो बलि स्वर्ग के शासन पर राज्य करने लगे। अब वे तीनों लोकों के एक छत्र शासक थे, इस इन्द्रत्व के आसन को स्थिर रखने के लिए भृगुवंशी ब्राह्मणों ने बलि से एव सौ अश्वमेध यज्ञों का आयोजन कराया।"

इस कथा से स्पष्ट है कि वेद मन्त्रों के ऐसे अभिचारक कर्म

और विधि विधान हैं। जिनसे अस्त्र शस्त्रों को अभिमन्त्रित करके शक्ति शाली बनाया जा सकता है और दूसरों का मारण किया जा सकता है।

—卐—
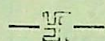
दिव्य अस्त्र शस्त्रों की प्राप्ति

जब कौरव सुई के भी बराबर भूमि पाण्डवों को देने को सहमत न हुए तो दोनों पक्षों को युद्ध निश्चित ही दिखाई दे रहा था। कौरवों का विस्तृत राज्य था। अतः उनके पास अपार अस्त्र-शस्त्रों का भण्डार वीर योद्धाओं और सहयोगी राजाओं का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही था। भीष्म द्रोण और कर्ण जैसे प्रचण्ड योद्धा उनके पक्ष में थे। पाण्डवों ने विचार किया कि हमारे पास कौरवों की अपेक्षा धन-जन अस्त्र-शस्त्र और सहयोग की कमी रहेगी। हमारे पास कुछ ऐसी दिव्य शक्ति होनी चाहिए जिसके सहयोग से हम विजय श्री प्राप्त कर सकें। अर्जुन ने भगवान शङ्कर की आराधना करने का निश्चय किया और हिमालय के शिखर पर घोर तपस्या आरम्भ कर दी। अर्जुन की मन्त्र साधना एक लम्बे समय तक चलती रही जिससे भगवान शिव प्रसन्न हुए और वरदान माँगने को कहा। अर्जुन के आग्रह पर मन्त्र शक्ति से संचालित होने वाला पाशुपतास्त्र नाम का दिव्य अस्त्र उन्हें प्राप्त हुआ। इसके बाद अर्जुन इन्द्र, अग्नि, चन्द्र, यम, वायु और वरुण की उपासना की जिससे देवता प्रसन्न हुए और अर्जुन को सदेह स्वर्ग पहुंचा दिया। वहाँ पर पाँच वर्ष तक मन्त्र साधना के नियमों का पूर्णतया पालन करते हुए देवताओं से मन्त्रों सहित अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। जब अर्जुन ने देवताओं को गुरु दक्षिणा लेने का अनुरोध किया तो देवताओं ने समुद्र में रहने वाले पौलोम और निवात कवच नामक साठ हजार राक्षसों से रक्षा करने की बात कही। अर्जुन ने इसे स्वीकार किया और राक्षसों

से युद्ध करके उन्हें पराजित किया। तत्पश्चात अपने घर लौटे। महाभारत की विजय का श्रेय जहाँ भगवान कृष्ण की शक्ति, राजनीति व अन्य कारणों को दिया जाता है, वहाँ भगवान शङ्कर से अर्जुन को प्राप्त मन्त्र सहित उस पाशुपतास्त्र नामक दिव्य अस्त्र को भी वीर योद्धा अर्जुन के सामने ठहरने का साहस नहीं कर सकता था।

———

आग्नेयास्त्र के प्रयोग से एक अक्षौहिणी सेना नष्ट हुई

महाभारत युद्ध में जब गुरु द्रोणाचार्य मारे गये, तब उनके पुत्र अश्वत्थामा ने अत्यन्त आवेश में आकर दुर्योधन के सामने यह सङ्कल्प किया कि जब युधिष्ठर ने अपने गुरु से झूठ बोलकर अस्त्रों का त्याग कराया है, उन्हीं की उपस्थिति में ही उनकी सारी सेना का नाश कर दूंगा। मैं आज सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि पाण्डव सेना के जो भी वीर मेरे सामने आयेंगे, वे धराशयी होकर रहेंगे।

उस दिन अश्वत्थामा ने पाण्डवों की सेना पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया जिसके प्रभाव से हजारों लाखों की सँख्या में विष धर साँप की तरह बाण निकलने लगे। ऐसा प्रतीत हो रहा था सारा आकाश उन बाणों से ही ओत-प्रोत हो रहा है। बाणों के अतिरिक्त वहाँ कुछ दिखाई ही न दे रहा था। महाभारत में लिखा है कि अश्वत्थामा के इस नारायणास्त्र के प्रयोग से एक अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई।

अश्वत्थामा का यह नारायणास्त्र निश्चित रूप से मन्त्र शक्ति से अभिभावित था। इसे मन्त्र शक्ति का ही चमत्कार कहना चाहिए।

इसी प्रसङ्ग में अश्वत्थामा द्वारा प्रयोग किये गये नारायणास्त्र से होने वाले नर संहार को देखकर अर्जुन ने वरुणास्त्र का प्रयोग किया था। यह भी मन्त्र शक्ति से अभिमन्त्रित था। नारायणास्त्र की धधकती ज्वालाओं में इस वरुणास्त्र से कुछ शांति का आभास हुआ था। इसी बीच अर्जुन को ब्रह्मा रचित ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना पड़ा था जिससे कुछ ही समय में अन्धकार का नाश हुआ, शीतल वायु का सञ्चार होने लगा और अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र का प्रभाव भी कुछ कम हुआ।

महाभारत युद्ध में इस प्रकार के मन्त्र शक्ति से चालित होने वाले आग्नेयास्त्र और वरुणास्त्र जैसे अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग हुआ था।

दिव्य अभिमन्त्रित कवच का अमिट प्रभाव

जब दुर्योधन ने यह देखा कि अर्जुन, भीम और पाण्डव पक्ष के अन्य दुर्धंष वीरों के तीव्र प्रहारों को कौरव पक्ष की सेना सहन नहीं कर पा रही है, तो पाण्डवों से पराजित होने की कल्पना करके वह भयभीत हो गया और द्रोणाचार्य के पास जाकर निवेदन करने लगा कि आप और भीष्म पितामह और कर्ण जैसे अनुभवी योद्धाओं के होते हुए भी यदि हमें पराजय का मुँह देखना पड़ा तो हम सब का बड़ा अपमान होगा।

द्रोण ने निराश दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा—वास्तव में अर्जुन अजेय है। परन्तु आज तुम्हें मैं एक ऐसा उपाय बताता हूं जिस से तू उससे भी जमकर युद्ध करने की स्थिति में हो जायेगा और तुझे

कोई हानि नहीं होगी। मैं तुझे यह स्वर्ण कवच पहनने के लिए देता हूँ। जब तक यह शरीर पर रहेगा, इस पर किसी भी अस्त्र का प्रभाव नहीं हो पायेगा।

द्रोणाचार्य ने आचमन करके शास्त्रीय विधि विधान से मन्त्र उच्चारण करके वह अद्भुत कवच दुर्योधन को ग्रहण कराया।

द्रोण ने इस कवच का इतिहास बताते हुए कहा कि इन्द्र ने जब वृत्रासुर पर आक्रमण किया था तो वह इसी कवच को पहनकर वृत्रासुर के तीव्र प्रहारों से सुरक्षित रहे थे। यह कवच इन्द्र को शिव से प्राप्त हुआ था। इन्द्र ने वह मन्त्र युक्त कवच अङ्गिरा को दिया था। अङ्गिरा ने पुत्र बृहस्पति को, बृहस्पति ने अग्निवेश्य को और अग्निवेश्य ने यह कवच कृपापूर्वक मुझे दिया है। जिसको विधि पूर्वक अभिमन्त्रित करके मैंने तुझे ग्रहण कराया है।

दुर्योधन ने इस दिव्य कवच का अनुकूल प्रभाव देखा। वह उस दिन अर्जुन से भी जम कर लड़ा। अर्जुन को भी बड़ा आश्चर्य था कि आज दुर्योधन मेरे सामने टिकने का साहस कैसे कर रहा है, परन्तु वह उस दिव्य अभिमन्त्रित कवच का प्रभाव था जिसने उसे चारों ओर के भीषण आक्रमणों से सुरक्षित रखा।

—卐—
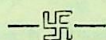
अर्जुन के पार्जन्यास्त्र से निकले जल से भीष्म पितामह को तृप्ति हुई

यह घटना महाभारत युद्ध के उस समय की है जब अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से बिंधकर भीष्म पितामह बाण शय्या पर लेटे हुए योगबल से उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाणों के तीव्र घावों से उनके सारे शरीर में भयङ्कर जलन हो रही थी जिससे वे थोड़ी-थोड़ी

देर के बाद मूर्च्छित हो रहे थे। उनके चारों ओर कौरव पाण्डव और दोनों पक्षों के गणमान्य राजागण खड़े थे। सब पर एक व्यापक दृष्टि डालकर भीष्म ने कहा—"जल पिलाओ।" यह सुनते ही कौरव पाण्डव दोनों पक्षों के खड़े व्यक्ति शीतल जल और विभिन्न प्रकार के व्यञ्जन लाने को दौड़े और थोड़ी ही देर में जल और विभिन्न प्रकार के भोजन उपस्थित हो गये। भीष्म वाण शय्या से उठकर जल पीने और भोजन ग्रहण करने की स्थिति में नहीं थे। अतः दोनों पक्षों के राजाओं को उन्होंने सम्बोधित करते हुए कहा—'जिन पदार्थों को मैं सारे जीवन ग्रहण करता रहा हूँ, उन्हें अब मैं नहीं भोग सकता, मैं तो अब मृत्युलोक से बाहर शर शय्या पर शयन कर रहा हूँ, और सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।' हिन्दू धर्म की यह मान्यता है कि दक्षिणायन में प्राण छोड़ने वाला व्यक्ति अधोगति को प्राप्त होता है, और उत्तरायण के समय इस नश्वर शरीर को छोड़ने वाला ऊर्ध्व लोकों में गमन करता है। जिस समय भीष्म बाण शय्या पर पड़े थे, वह दक्षिणायन थे। इसलिए वह अपने प्राणों को उत्तरायण के आने तक नियन्त्रित किए हुए थे।

कुछ देर बाद भीष्म ने अर्जुन को बुलाया। अर्जुन ने पितामह को प्रणाम किया और आज्ञा के लिए अनुरोध किया। अर्जुन को देखते ही भीष्म ने कहा—"तुम्हारे वाणों ने मेरे शरीर को बहुत घायल कर दिया है, जिससे मर्म स्थलों में तीव्र पीड़ा और जलन का अनुभव कर रहा हूँ। मेरा मुख सूख रहा है, प्यास से व्याकुल हूँ। तू मुझे जल पिला। तू शक्तिवान और धनुर्धर है। मेरी वर्तमान स्थिति को देखते हुए तू ही मुझे शीतल जल का पान करा सकता है। अर्जुन ने पितामह की आज्ञा को शिरोधार्य किया और अपने रथ पर चढ़कर अपने गाण्डीव धनुष को टंकारा। तत्पश्चात् एक चमचमाता हुआ वाण निकाल कर उसे एक विशिष्ट मन्त्र से अभिमन्त्रित किया और उस पर्जन्यास्त्र को धनुष पर रखकर पितामह के दाएँ ओर पृथ्वी में छोड़ा, उस बाण का

पृथ्वी में घुसना ही था कि उस स्थान से निर्मल और शीतल जल की अमृत धारा निकल कर भीष्म के मुख में आने लगी। इस शीतल जल का पान कर भीष्म तृप्त और प्रसन्न हो गये।

अर्जुन निश्चय ही धनुष वाण चलाने में सिद्ध हस्त थे। परन्तु केवल वाण चलाने से इस प्रकार का चमत्कारी कृत्य करना सम्भव नहीं है। उसकी धनुष संचालन विद्या के साथ जब मन्त्र शक्ति संयुक्त हुई, तब ही यह अनोखा कार्य सम्पन्न हो पाया। केवल यह पर्जन्यास्त्र ही नहीं मन्त्र शक्ति से प्रयुक्त होने वाले अनेको प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन महाभारत में आता है। उपरोक्त प्रसङ्ग में ही जब अर्जुन के बाण से शीतल जल की धारा भूमि से फूट निकली तो भीष्म ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा कि अब भी समय है, तुम मान जाओ और आधा राज्य पाण्डवों को दे दो। अर्जुन की शक्तियों का स्पष्टीकरण करते हुए भीष्म ने दुर्योधन से कहा कि पाशुपत, ब्राह्म, प्रजापत्य, आग्नेय, वारुण, वैष्णव, ऐन्द्र, वायव्ये, सविता, त्वष्टा और विधाता नाम के मन्त्र से चलने वाले सभी अस्त्र अर्जुन और श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी के पास नहीं हैं।

★ ★ ★

दस हजार राजा कैद से छूटे

महाभारत में जिन आततायी राजाओं का वर्णन आता है, उन की सूची में जरासन्ध का नाम सबसे पहले ही आना चाहिये, क्योंकि उसने अपनी सञ्चित शक्तियों का दुरुपयोग करके अपने राज्य की जनता और दूसरे छोटे-२ राज्यों के शासकों पर अत्यन्त भीषण अत्याचार किए थे वह भारतवर्ष के समस्त राजाओं को अपने नियंत्रण में रखना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने दस हजार राजाओं

को पराजित करके जेल में डाल दिया था। उन राजाओं को जरासन्ध की कैद से छूटने का कोई उपाय नहीं सूझ पा रहा था। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की। घूमते हुए नारद जी वहाँ पहुँच गये और उन्हें दुःख निवृत्ति के लिए भगवान के निम्न मन्त्र की साधना बताई।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ।।

उन राजाओंने श्रद्धा पूर्वक इस मन्त्र की साधना की। धीरे-धीरे ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती गईं कि उन्हें कैद से छूटने की आशा बँधी। इतिहास साक्षी है कि भगवान कृष्ण और भीम ब्राह्मण वेष में जरासन्ध के पास गये और उसे मल्लयुद्ध के लिए आमन्त्रित किया। भीम ने भगवान कृष्ण के घास के दो टुकड़े करने के संकेत से जरासन्ध की टाङ्ग चीर दी और उसे धराशायी कर दिया। जरासन्ध की मृत्यु के बाद दस हजार कैद राजा जेल से छूटे और तब उन्हें संतोष की सांस मिली। वे बार बार नारद जी को धन्यवाद दे रहे थे, जिन्होंने इनको घोर संकट से छूटने का सिद्ध मन्त्र दिया।

* * *

वन में हजारों अतिथियों को भोजन कराया गया

भगवान राम जब चौदह वर्ष के लिए बनवास को चले गये और भरत ननिहाल से लौटे तो उन्हें इस अनहोनी घटना की सूचना से धक्का सा लगा और वह सोचने लगे कि यह सारा घटना चक्र मुझे राज्य शासन दिलवाने के लिए ही हुआ है। वे अप्रत्यक्ष रूप से अपने को ही दोषी मानने लगे। उन्होने निश्चय किया कि वे वन में जाकर राम से क्षमा याचना करके किसी भी तरह उन्हें लौटाने का प्रयत्न

करेंगे। जब भरत के वन में जाने की सूचना नगर में फैली तो अयोध्या की अधिकाँश प्रजा उनके साथ चलने के लिए तैयार हो गई। प्रयाग पहुंचने पर ही उन्हें रात हो गई। वहाँ पर महर्षि भारद्वाज का आश्रम था। महर्षि ने अपना आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। प्रश्न केवल भरत या उनके साथ गये विशिष्ट व्यक्तियों का नहीं था। भोजन तो भरत के साथ गये सभी प्रजाजनों को कराना था। वन में इतने अधिक लोगों के भोजन की व्यवस्था एक दम सम्भव भी नहीं थी। परन्तु महर्षि को अपनी मन्त्र-शक्ति पर विश्वास था। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी मन्त्र शक्ति के प्रभाव से कामधेनु के द्वारा विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन उत्पन्न किए और सभी अतिथियों को भरपेट भोजन कराया।

* * *

द्रोपदी की आर्त पुकार से भगवान दौड़े-दौडे आए

कौरव चाहते थे कि पाण्डवों को किसी प्रकार से राज्य विहीन किया जाय। दुर्योधन का मामा शकुनी जुआ खेलने में सिद्ध हस्त था। उसने उन्हें प्रेरित किया कि यदि पाण्डव जुआ खेलने के लिए सहमत हो जाते हैं तो तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि सहज में ही हो सकती है "होनी बलवान है" की उक्ति के अनुसार युधिष्ठिर जैसे धर्म सम्राट भी जुआ खेलने के लिए मान गए। पाण्डव दाव पर दाव हारने लगे। जुआरी को यह आशा रहती ही है कि शायद अगला दाव उसके पक्ष में हो जाय। इसी आशा में वह अपना सर्वस्व खो बैठता है। उसे अपने जीवन और परिवार के भविष्य का कोई ध्यान नहीं रहता। यहीं

पाण्डवों के साथ हुआ। युधिष्ठिर सोच रहे थे कि शायद अगले दाव में उन्हें सफलता मिल जाय। समझ नहीं आती, इतने दूर-दर्शी व्यक्ति कैसे ऐसे निम्न कोटि के कार्यों में फस सकते हैं? जब कि भली भाँति जानते होंगे कि कौरव उन्हें हर प्रकार से नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। और यह दुष्कृत्य भी उनकी इसी कुप्रवृत्ति का एक अङ्ग है। परन्तु इतिहास बताता है कि युधिष्ठिर जैसे धर्मज्ञ और बुद्धिमान व्यक्ति भी बिना परिश्रम के भविष्य निर्माण की बात सोचने लगे। इस आशा से भविष्य उज्वल भी हो सकता है और अन्धकारमय भी। पाण्डवों को अन्धकार ही हाथ लगा। वे दाव पर दाव लगाते रहे और इसी दुराशा में अपना राज्य-पाट सब खो बैठे। कौरवों को यहीं तक सन्तोष नहीं था। उन्होंने द्रोपदी को भी दाव पर लगाने को प्रेरित किया। आशा के वशीभूत होकर द्रोपदी भी दाव पर लगी और पाण्डव उस रत्न मणि को खो बैठे।

अब दुर्योधन अपना बदला लेने के लिए स्वतन्त्र था। उसने द्रोपदी को बुलवा भेजा। द्रोपदी उस समय रजस्वला थी और एक ही वस्त्र पहने हुए थी। दुर्योधन जब एक बार पाण्डवों के महल में गये थे, तो अज्ञानता वश जल के सरोवर में गिर गये थे। तब द्रोपदी ने हँसते हुए कहा था अन्धों के पुत्र अन्धे ही होते हैं। दुर्योधन अपने इस अपमान का बदला द्रोपदी से लेना चाहते थे। अब द्रोपदी उनके नियन्त्रण में थी- वे उससे मनमाना व्यवहार करना चाहते थे। दुःशासन द्रोपदी को केशों से पकड़ कर घसीटता हुआ राज-सभा में लाया। दुर्योधन ने सभी प्रकारके शिष्टाचारों की उपेक्षा करके आज्ञा दी कि द्रोपदी को भरी सभा में निर्वस्त्र कर दिया जाय। वह भूल गया कि द्रोपदी उसके भाइयों की पत्नी है, वह स्वयं शासक है, धर्मज्ञ बुद्धिमान और दूरदर्शी गुरुजन वहाँ उपस्थित हैं और धृतराष्ट्र भी वहाँ विराजमान हैं। इतने पर भी वह इतना अशिष्ट और असभ्य व्यवहार करने के लिए तैयार हो गया

जिसकी कि कभी उससे आशा नहीं की जा सकती थी।

इस आज्ञा से सभा में सन्नाटा छा गया, परन्तु किसी को भी दुर्योधन के विरुद्ध बोलने का साहस न हुआ। द्रोपदी ने अवश्य वहाँ उपस्थित धर्मज्ञोंसे यह तर्क किया कि जब युधिष्ठिर अपना सर्वस्व खो चुके थे तो क्या उनको मुझे दाव पर लगानेका कोई अधिकार रह गया क्या धर्म और न्याय की दृष्टि में मैं हारी या नहीं ? द्रोपदी को इस तर्क का कोई उत्तर नहीं मिला। द्रोपदी को जब धर्मज्ञों से कुछ भी न्याय की आशा न रही तो उसने भगवान की शरण ली। उसने कृष्ण मन्त्र का जाप आरम्भ किया। उधर दुर्योधन की आज्ञा से तथा कथित दस हजार हाथियों का बल रखने वाले दुःशासन ने द्रोपदी की साड़ी को पकड़ा। द्रोपदी में इतनी शारीरिक शक्ति कहाँ थी कि वह दुःशासन के प्रयत्न को निष्फल कर सकती। उसके तो एक मात्र रक्षक कृष्ण थे। जिनको वह पुकार सकती थी। भक्त की आर्त पुकार सुनकर भगवान दौड़े-दौड़े आते हैं। द्रोपदी निरन्तर भगवान का स्मरण कर रही थी। अब उसने अपना सर्वस्व प्रभु को अर्पण करके ऐसी आर्त पुकार की कि अणु-अणु व्याप्त उसके प्रभु साड़ी में स्थूल रूप धारण करके ऐसे क्रियाशील हुए कि सभी को देखकर आश्चर्य होने लगा कि दुःशासन अपनी पूरी शक्ति और वेग से द्रौपदी की साड़ी को खींच कर उतार रहा है। वहाँ उपस्थित लोगों ने देखा कि साड़ी खिचकर उतर तो रही है परन्तु वह सीमित नाप की साड़ी असीम हो गयी है और पूरा प्रयत्न करने पर भी उसका अन्त नहीं दिखाई दे रहा है। सभा में साड़ियों के ढेर लग गए हैं। दुःशासन थक कर चूर हो गया परन्तु अपनी भुजाओं में दस हजार हाथियों का बल रखने वाला व्यक्ति भी एक अबला स्त्री की साड़ी उतारने में असमर्थ रहा। यह असम्भव दिखाई देने वाला एतिहासिक चमत्कार मन्त्र शक्ति से सम्भव हुआ।

★ ★ ★

सूर्य द्वारा प्रदत्त पात्र से द्रोपदी नित्य हजारों अतिथियों को भोजन कराती रही

महाभारत वन पर्व (३) में वर्णित कथा के अनुसार जब पाण्डवों को वनवास हुआ और वे वन में जाने की तैयारी करने लगे तो उनके परम स्नेह के कारण सभी नगर वासी ब्राह्मण उनके साथ वन में जाने को तैयार हो गये समझा बुझाकर अधिकाँश प्रजा को तो पीछे लौटा दिया गया परन्तु शौनक आदि ब्राह्मण किसी भी प्रकार लौटने के लिये तैयार न हुए। पाण्डवों के पास उनके भोजन की व्यवस्था कैसे होती, यह उनके सामने एक जटिल प्रश्न था जिनका कोई सहज समाधान उनकी समझ में नहीं आ रहा था। युधिष्ठिर ने अपने मन की व्यथा धौम्य ऋषि के सामने रखी कि अन्नाभाव के कारण ब्राह्मण उपवास कर रहे हैं। इतने लम्बे समय तक इनके लिए अन्न की व्यवस्था कैसे हो पायेगी। महर्षि धौम्य ने सुझाव दिया कि जब-जब भी प्रजा पर अन्न सम्बन्धी कष्ट आए है, उसे भगवान सूर्य की आराधना से ही दूर किया जा सका है। धौम्य ने युधिष्ठिर को मन्त्र के साथ "सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र" का पाठ करने की प्रेरणा दी। यह स्तोत्र नृसिंह पुराण, अध्याय २०, स्कन्द, कुमारि० ४२, ब्रह्मपुराण तथा महा०, वन० ३।१६-२८ में वर्णित है। युधिष्ठिर की उपासना से भगवान सूर्य प्रसन्न हुए और एक तांबे का परोसने वाला पात्र उन्हें दिया और कहा कि जब तक द्रोपदी स्वयं बिना खाए हुए इस पात्र से परोसती रहेगी, तब तक हजारों व्यक्तियों के लिए भी यह भोज्य पदार्थों का भंडार प्रस्तुत करता रहेगा और कभी भी अभाव की स्थिति नहीं आने पाएगी। इस तरह से बारह वर्ष तक तुम अपने अतिथियों

का आतिथ्य करते रहोगे। द्रोपदी इस नियम के अनुसार हजारों ब्राह्मणों को चमत्कारी रूप से भोजन कराती रही। वास्तव में सूर्य मन्त्र और "सूर्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र" की दिव्य शक्ति का ही यह प्रभाव था।

★ ★ ★

लड़की जल पर चल कर यमुना पार उतरी

एक दिन एक पण्डित जी कथा कहते हुए यह उपदेश दे रहे थे कि भगवान के नाम और मन्त्र में इतनी शक्ति है कि वह मनुष्य को भव सागर से पार उतार सकती है। एक लड़की इस कथा को सुन रही थी। उसे पंडित जी के इन वचनों पर विश्वास हो गया। वह लड़की नित्य प्रति यमुना पार जाकर दही बेचती थी। एक दिन उसे देर हो गई। माँझी उसे पार नहीं ले गया। लड़की को पंडित जी के उपदेश का ध्यान आया कि यदि मन्त्र शक्ति से भवसागर से पार होना सम्भव है तो यमुना को पार करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। वह विश्वास पूर्वक राधे कृष्ण-राधे-कृष्ण मन्त्र का उच्चारण करती हुई यमुना पार उतरने के लिए उद्यत हुई। उसने अनुभव किया कि वह जल पर नहीं भूमि मार्ग पर जा रही है क्योंकि उसकी साड़ी भी नहीं भीग रही थी उसके साथ अन्य लड़कियों ने भी उसका अनुकरण किया और "राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण" कहती हुई यमुना पार उतर गईं।

जब पण्डित जी को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई तो उन्हें मन्त्र का यह चमत्कार देखने की उत्सुकता हुई। वे तो केवल उपदेश

देना ही जानते थे। इसलिए उनको इस पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने उस लड़की से अनुरोध किया कि वह उन्हें भी अपने साथ उसी प्रकार यमुना पार उतार दे। दोनों साथ-२ यमुना में उतरे। पण्डितजी का विश्वास डगमगाने लगा। उनका मन्त्रोच्चारण भी लड़-खड़ाने लगा। उनका मन मन्त्रोच्चारण में नहीं अपने वस्त्रों की देख रेख में था ताकि वे भीग न जाय और कहीं गहरे जल में चले गये तो वे स्वयं डूब न जाय लड़की आगे-आगे जा रही थी परन्तु पण्डितजी के पग रुक रहे थे। उन्हें भय ने घेर लिया था। लड़की बढ़ती जा रही थी। पण्डितजी रुक गये। वे केवल इतना ही देख पाये कि लड़की के आगे दो सुन्दर हाथ जा रहे हैं, सम्भवत: उन्हीं के सहयोग से वह यमुना पार कर रही थी।

इस कथा से यह प्रेरणा मिलती है कि मन्त्र साधना में मन्त्र शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हो तो उसकी शक्ति प्रस्फुटित नहीं हो पाती और शक्ति से जो चमत्कार लाभ अन्य साधकों को प्राप्त हुए हैं वह उन्हें नहीं प्राप्त हो पाते।

★ ★ ★

युवराज पद के अधिकार की प्राप्ति

कौन हिंदू है जो बालक ध्रुव की कथा को नहीं जानता है, परन्तु हर व्यक्ति के अध्ययन का दृष्टिकोण अलग होता है। हम यहाँ ध्रुव को एक उच्चकोटि के निष्ठावान और दृढ़-प्रतिज्ञ सफल मन्त्र साधक के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। ध्रुव की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ सुरुचि और सुनीति नाम की थीं। राजा छोटी रानी सुरुचि से ही अधिक स्नेह रखते थे। एक

दिन सुनीति का पुत्र ध्रुव स्नेह वश पिता की गोद में बैठने लगा तो सुरुचि ने ध्रुव को दुत्कारते हुए कहा कि राजा की गोद में बैठने का अधिकार मेरी कुक्षि से उत्पन्न संतान को ही है। यदि तुम पिता की गोद में बैठना चाहते हो तो तुम्हें भगवत्साधन करके मेरी कुक्षि से उत्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त करना होगा। ध्रुव की आयु केवल पांच वर्ष की ही थी। उसके मन में एक तूफान सा खड़ा हो गया। विमाता के विरोध ने उसे स्वावलंबी बनने की प्रेरणा दी वह अपनी माँ के पास रोता हुआ गया और माता से सारी घटना कह सुनाई। माँ ने उससे कहा कि विमाता ने तुम्हें उत्तम प्रेरणा ही दी है कि जो कुछ भी तुम प्राप्त करना चाहते हो, वह सब ईश्वरीय शक्ति से हो सकता है।

ध्रुव साधना के लिए अकेला ही निकल पड़ा। वह भगवत्भजन और उसके नियम उपनियमों से विल्कुल अपरिचित था। दैवयोग से देवऋषि नारद ध्रुव के पास स्वयं आये और भगवान नारायण के द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया। ध्रुव अपनी साधना में लग गया। एक मास तक उसने तीन-२ दिन के बाद केवल बेर और कैथ खाए। दूसरे मास हर छः दिन के बाद वृक्षों से अपने आप गिरे पत्ते और सूखे तृण खाए। तीसरे माह हर नौ दिन के बाद केवल जल पीकर ही रहे। इस तरह से एक पैर पर निश्चल अखण्ड रूप से ध्रुव मन्त्र जाप करते रहे। इस घोर तपोसाधना से देवताओं का आसन डोलने लगा। पिता के मन में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। ध्रुव को भगवान नारायण के दर्शन हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम ऐसे पद के अधिकारी हो गये हो जिस पद को तुम्हारे कुल में से किसी ने भी प्राप्त नहीं किया है। जिस राजा उत्तानपाद ने सुरुचि के प्रभाव से अपने ही पुत्र को स्नेह प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं समझी थी, वह अब ध्रुव को युवराज पद देने के लिए उत्कण्ठित हो गया। यह परिवर्तन केवल ध्रुव की मन्त्र-जप-साधना के कारण ही संभव हो पाया है।

कामदेव के जीवन का ही कायाकल्प हो गया

धन्य है बाँगला प्रान्त के यशोहर जिला का बूढ़न ग्राम जहाँ स्वामी हरिदास नाम के एक यवन संत ने जन्म लिया। वे जन्म से तो मुसलमान थे परन्तु उनके पूर्व जन्म के कुछ ऐसे संस्कार जाग्रत हो गये कि उन्हें श्रीकृष्ण भक्ति में अनुराग हो गया। घर छोड़कर वन ग्राम के निकट घने जङ्गल में कुटी बनाकर साधना करने लगे। एक समय की भिक्षा उनके शरीर निर्वाह के लिए पर्याप्त थी। नित्य प्रति उच्च स्वर से उच्चारण करके तीन लाख मन्त्र-जप का उनका दैनिक नियम था। उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी। वन ग्राम के निकटरामचन्द्र खान नाम के एक जमींदार उनसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने हरिदास को भ्रष्ट करने की एक योजना बनाई। कुछ धन देकर एक वैश्या को रात्रि के समम उनके पास भेजा। स्वामी हरिदास ने अभी युवावस्था में ही पदार्पण किया था। वैश्या ने उस निर्जन वन में एकान्त में निवास करने वाले उस संत को अपने कामुक हाव भाव से हर प्रकार से आकर्षित करने का प्रयत्न किया परन्तु रात भर हरिदास अपने नामोच्चारण में ही लगे रहे। वैश्या के सजे धजे शरीर की ओर उनका ध्यान तक न गया। प्रातः काल केवल इतना ही कह दिया "संकल्पित नाम जप पूरा नहीं हो पाया था। इसलिए आपसे कोई बात न हो सकी।" वैश्या को आशा बँधी कि शायद यह मुझे चाहते तो हैं परन्तु समयाभाव से कुछ बात न कर सके। वह दूसरी रात को भी आई परन्तु उसे वही उत्तर सुनना पड़ा कि नाम जप पूरा न होने के कारण कोई बात न हो सकी। वह तीसरी रात भी आई और सारी रात उस परम सन्त के नामोच्चारण को सुनती रही। इससे वह अपनी विकारोत्तेजक

इच्छाओं को भूल गई, उसका गर्व नष्ट हो गया कि वह किसी भी युवक को अपनी इच्छानुसार इशारों पर नचा सकती है। हरिदास के उच्च चरित्र का उसके दूषित मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। हरिदास और अपने जीवन की तुलना करने से प्रतीत उसे हुआ कि मेरा जीवन कितना निकृष्ट है कि भक्त जनों को धन के लालच में भ्रष्ट करने की कुचेष्टा करती हूँ। उसका मन एक दम पलटा। वह प्रातः काल हरिदास के चरणों पर गिर पड़ी और मन्त्र दीक्षा की प्रार्थना की। हरिदास ने वैश्या को अपनी समस्त सम्पत्ति अभावग्रस्तों को देने के वाद साधना करने की आज्ञा दी। वैश्या का मन उसी समय उत्थान की भूमिका में था। कुछ करने और वढ़ने के लिए आंदोलित था। वह अपने उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकती थी, एक संत से प्रभावित होकर उसके मन में अब सांसारिक प्रतिष्ठा और धन का मोह नहीं रहा था। उसने अपना सारा धन गरीबों को लुटा दिया और हरिदास के चरणों में आ गई हरिदास ने उसे अपनी माला देकर नाम जप की दीक्षा दी और स्वयं शांतिपुर चले गये।

यह मन्त्र शक्ति का ही प्रभाव था कि एकांत वन में युवा स्त्री की कामुक चेष्टाएँ करने पर भी वह संयमी वने रहे। बल्कि यों कहना चाहिये कि जैसे शिव का रूप धारण करके उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया हो। शिव ने तो केवल कामदेव को भस्म ही कर दिया था परन्तु हरिदास ने एक और चमत्कार दिखाया कि उन्होंने कामदेव के स्थूल शरीर को नष्ट नहीं किया वरन् उसके मनको परिवर्तित कर दिया जिससे उसे उत्थान का एक नया मार्ग मिला।

———

मृत्यु दंड मिलने पर भी सिद्धान्त निष्ठा बनी रही

बङ्गला प्राप्त के स्वामी हरिदास मुसलमान थे, और हिन्दू पद्धति के अनुसार उपासना करते थे तथा दिन रात कृष्ण नाम का कीर्तन करते थे। हिन्दुओं को का फिर कहने वालों को यह कैसे सहन हो सकता था।

उस समय बङ्गाल में मुस्लिम शासन था। गोराई काजी ने मुलुकपति की अदालत में प्रार्थना पत्र दिया कि हरिदास मुसलमान है और हिन्दुओं के देवताओं का मन्त्र जाप करता है उसे अवश्य दण्ड मिलना चाहिए। हरिदास अदालत में पेश हुए। उन्हें यह साधना छोड़ने के लिए कहा गया। परन्तु हरिदास ने न्यायाधीश को स्पष्ट उत्तर दिया कि भले ही मेरे शरीर के टुकड़े २ कर दिए जाँय परन्तु यह मन्त्र जप बन्द करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। न्यायाधीश ने आज्ञा दी कि हरिदास को बेंत मारते २ बाईस बाजारों में घुमाया जाय। इसे तब तक न छोड़ा जाय जब तक इसके प्राण न निकल जांय। कोपीनधारी और नग्न शरीर वाले हरिदास पर बेंत बरसते रहे और वे नामोच्चारण करते हुए उसे प्रसन्नता पूर्वक सहते रहे। शरीर तो आखिर शरीर ही है। वे मूर्छित हो गये सिपाहियों ने उन्हें मृत समझकर गङ्गा में डाल दिया। कुछ देर के बाद उनकी चेतना लौटी और वे बाहर निकल आये।

यह घटना भी किसी चमत्कार से कम नहीं है। मृत्यु सामने नृत्य कर रही हो और कोई व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक सहन करता हुआ ईश्वर का नामोच्चारण करता रहे। यह सामान्यतः असम्भव और अनोखी घटना ही प्रतीत होती है क्योंकि सामान्य व्यक्ति शरीर रक्षा के लिए अपने किसी भी प्रिय से प्रिय सिद्धान्त से चिपके रहना पसन्द

न करेगा। हरिदास की अपने इष्टदेव और साधना के प्रति महान दृढ़ता किसी भी बड़े से बड़े चमत्कार से कम नहीं है।

भक्तजनों की विपत्तियों को सहज में दूर करने वाले सिद्ध ब्रह्मचारी

अपनी राजा तुल्य सम्पत्ति को ठोकर मारकर नवावगंज के निकट सरयू तट पर पंडित वलभद्र नाम के एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने एक कुटी बनाकर गायत्री का घोर तप किया। उन्होंने एक-एक करोड़ के २४ अनुष्ठान किए। कहा जाता है कि एक करोड़ गायत्री जाप से गायत्री की महासिद्धि प्राप्त होती है और ऐसे महासिद्धों को प्राचीन काल में वशिष्ठ के नाम से सम्बोधित किया जाता था। ब्रह्मचारी जी ने २४ करोड़ की परम साधना की। इससे उनकी शक्तियों और सिद्धियों की सहज ही कल्पना की जा सकती है। उन्हें गायत्री का साक्षात्कार हुआ, सभी प्राणियों में वे गायत्री का ही रूप निहारते थे। इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर जो भी विपत्तिग्रस्त व्यक्ति उनके पास आता, वे अवश्य उसकी सहायता करते थे। जो भी भक्त उनके संरक्षण में रहे, उन्हें कभी किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। एक बार चेचक और हैजे का प्रकोप हुआ परन्तु जो भक्त ब्रह्मचारी जी के सम्पर्क में रहे, वे इन रोगों से बचे रहे। एकबार प्रलय तुल्य वर्षा हुई जिसने व्यापक नाश किया। परन्तु ब्रह्मचारी जी ने जिनको आशीर्वाद दिया, उन्हें हर प्रकार का संरक्षण प्राप्त हुआ। एक व्यक्ति को जेलखाने के दण्ड से उन्होंने मुक्त कराया था। एक भक्त के कन्या विवाह की जटिल समस्या को सहज रूप में सुलझा दिया था।

ऐसी ही हजारों विपत्ति ग्रस्त व्यक्तियों के दुःख का उन्होंने निवारण किया। वास्तव में गायत्री मन्त्र में इतनी शक्ति और सामर्थ्य है कि उसके प्रभाव से साधक अपना और दूसरे का लौकिक व पारलौकिक कल्याण कर सकता है।

* * *

ज्ञान यज्ञ का व्यापक विस्तार

राजगढ़ के राज्य पूजित वंश में जन्मे पण्डित भागीरथ जी ने अपने नाम को सार्थक किया। भागीरथ जी ने पतित पावनी गङ्गाजी का अवतरण किया था। यह भागीरथ जी भी कुछ ऐसे ही असाधारण कार्य करना चाहते थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने २४ वर्ष तक उपवास पूर्वक गायत्री की तपश्चर्या की। केवल थोड़ा सा दूध और फल उनके शरीर धारण के लिए पर्याप्त था। चौदह घन्टे वे मौन रहते थे और १० घण्टे अमृत वर्षा करते थे। उनकी वाणी से सदैव ब्राह्मी शिक्षा और दैवी प्रवचनो का स्रोत प्रवाहित होता रहता था। इसलिए उन्हें महात्मा हरि ओम तत्सत् कहते थे। वे निश्चित रूप से सिद्ध महापुरुष हैं। उन्हें अनेकों प्रकार की सिद्धियाँ और शक्तियां प्राप्त थीं परन्तु अपनी सिद्धियों को सदैव गुप्त ही रखते थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्धि के लिए कभी प्रदर्शन नहीं किया ताकि स्वार्थी लोग उनके पास एकत्रित होकर उनके तप को खंडित व क्षीण न करने लगें। वे चाहते थे कि सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को आत्मिक दृष्टि से ऊँचा उठा दें। हर व्यक्ति को आत्म साधना में लगाना ही उनका लक्ष्य था। राजगढ़ का सारा क्षेत्र उनका एक प्रकार से स्मारक सा है। जहां उनके सद्प्रयत्नों से ही रामायण और गीता का घर २ प्रचार हो गया। यह दृश्य शायद ही कहीं देखने में आता हो

जैसा कि राजगढ़ की सड़कों पर दिखाई देता है। राजगढ़ की सड़कों पर छोटे बालक भी अपनी तोतली वाणी में रामायण की चौपाइयां गाते हुए मिलेंगे। वहाँ स्त्रियों को चक्की चलाते समय गीता के श्लोकों का उच्चारण करते हुए सुना जा सकता है। महात्मा हरी ओम तत्सत् प्रत्येक वर्ष चैत्र की राम नवमी को वृहद् ज्ञान का आयोजन करते थे। जिससे हजारों जिज्ञासु आत्माओं की ज्ञान पिपासा की तृप्ति होती थी। वे अपनी शक्तियों का उपयोग ज्ञान प्रचार में ही करते थे और कल्पनातीत कार्यों में उन्हें सफलता मिलती थी। वास्तव में यही उन की सिद्धि और सफलता थी। प्रदर्शनकारी सिद्धों से इनको ऊँचा दर्जा दिया जा जकता है।

★ ★ ★

अज्ञात व्यक्ति मार्ग दर्शक बना

लगभग बीस वर्ष पहले की घटना है, श्री रामकृष्ण वैद्य और उनका एक छोटा भाई बीना जंकशन (मध्यप्रदेश) पर उतरे। उस समय दोनों की आयु छोटी ही थी। उन्हें अपने पिता के पास गांव जाना था जो वहाँ से ग्यारह मील की दूरी पर था। सवारी का और कोई साधन नहीं था। उन्होंने पैदल यात्रा ही करनी थी। शाम के साढ़े पाँच बज चुके थे। कुछ ही देर में अन्धेरा होने की सम्भावना थी। वे भयभीत हो रहे थे कि किस प्रकार से इस समय निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच पाएँगे। आठ मील तो उन्हें गेट नं० ८ तक लाइन के साथ-साथ जाना था। उसके बाद ३ मील का गांव का रास्ता था। उस पैदल यात्रा में अकेले होने के कारण उन्हें भय लग रहा था। अतः वे लगातार बारी २ से—हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ का उच्च स्वर से उच्चारण करते

जा रहे थे। रात के आठ बजे के लगभग सेमरखेड़ी गेट नं० आठ पर पहुँचे जहाँ पर कोई ऐसा व्यक्ति न मिल पाया जिससे आगे के रास्ते की पूछ ताछ करते। वर्षा का मौसम था। चारों ओर पानी भरा हुआ था। अंधेरा हो चुका था। वृक्षों की आवाज भी उन्हें भयभीत कर रही थी। वे निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि अब किधर जाँय। इसी उधेड़ बुन में थे कि एक किसान सामने से आता दिखाई दिया जसके कंधे पर लाठी थी। उससे पूछने पर पता चला कि वह आगा-सौद जा रहा है। उन्हें संतोष हुआ क्योंकि उन्हें भी उसी ग्राम को जाना था। वे दोनों भ्राता पिताजी के पास पहुँचे तो उन्हें अपनी यात्रा का वर्णन करने में व्यस्त हो गये। जब उस किसान का परिचय देने और अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने की बात याद आई तो वहाँ जाकर देखा कि वहाँ कोई व्यवित नहीं है। वहाँ ग्राम में उसकी काफी खोज की गई परन्तु उसका कुछ पता न चला। लड़कों से उसने अपनी भैंस खो जाने की बात कही थी। वहाँ गांव के काँजी हाउस में पूछ ताछ की गई तो उस दिन कोई भैंस वहाँ नहीं आई थी। वे सब लोग सोचने लगे कि वह कौन व्यक्ति था जिसने लड़कों का मार्ग दर्शन किया पाठक स्वयं इसका निर्णय कर लें।

* * *

यमराज से टक्कर लेने की असाधारण सामर्थ्य

मध्यप्रदेश में अश्वपति नाम के राजा राज्य करते थे। वह धर्म में रुचि रखते थे और ब्राह्मणों की सेवा करते थे। उनके राज्य में कोई चोर और व्यभिचारी व्यक्ति नहीं था। कोई ऐसी स्त्री न थी

जो पर पुरुष को कुदृष्टि से देखती हो। उन्होंने सावित्रीदेवी की उपासना की, जिसके फलस्वरूप उनको एक कन्या की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने सावित्री रखा। जब सावित्री विवाह योग्य हुई और उसके गुणों के अनुरूप कोई वर न मिला तो एक दिन राजा ने कहा—"बेटी तू अब समझदार हो गई है। इसलिए अपने योग्य वर को तू स्वयं ही ढूँढ़ ले, क्योंकि शास्त्रों की आज्ञा है कि विवाह योग्य होने पर भी जो कन्या का विवाह नहीं करता, वह व्यक्ति निन्दा का पात्र है।" पुत्री से यूँ कहकर राजा ने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि—"तुम सावित्री के साथ जाओ।" सावित्री पहले तो सकुचाई परन्तु पिताकी आज्ञा थी, उसे स्वीकार करना ही था। पिता को प्रणाम करके मन्त्रियों के साथ चल दी। वह योग्य वर की खोज में अनेकों प्रदेशों और तपोवनों में घूमी और उसे अपने अनुरूप वर मिल गया वह प्रसन्न चित्त अपने घर लौटी।

जब सावित्री घर पहुँची तो राजमहल में देवर्षि नारद भी उपस्थित थे। सावित्री को उन्होंने अश्वपति से कहा—'राजन् ! तुम्हारी पुत्री अब युवती हो गई हैं। इसलिए शीघ्र ही इसका विवाह कर देना चाहिए।' राजा ने उत्तर दिया—'महर्षि ! सावित्री को मैंने इसी कार्य के लिए बाहर भेजा था। अभी-अभी वह लौट रही है। इसका समाचार वह स्वयं सुनायेगी।" इस पर सावित्री बोली—'पिताजी ! शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन राज्य छिन जाने के कारण वन में तपस्या कर रहे हैं। उनके पुत्र सत्यवान को मैंने अपने अनुरूप जानकर पति रूप में वरण कर लिया है।'

राजा ने अब नारदजी से पूछा—"आप तो तीनों कालों की बात जानने वाले हैं कृपया सत्यवान के सम्बन्ध में कुछ बतलाइये।" नारद बोले सत्यवान जितेन्द्रिय, तेजस्वी, उदार, क्षमाशील, शूरवीर, दानी और बुद्धिमान है। राजा ने कहा कुछ दोष भी बतलाइये। नारद ने कहा कि एक वर्ष के बाद उसकी मृत्यु हो जायेगी।

अश्वपति ने माथा ठोका और सावित्री से कहा कि तुम्हें अब

किसी दूसरे वर की तलाश करनी चाहिए। इस परिस्थिति में उससे विवाह करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। सावित्री बोली—"पिताजी ! आपका इस प्रकार विचार करना तो मेरे ही हित की बात है परन्तु कन्यादान तो एक बार होता है और 'मैंने दिया' ऐसा संकल्प भी एक बार किया जाता है। मैंने एक बार अपने पति को वरण कर लिया है। उसकी आयु लम्बी हो या छोटी, वह गुणों का भण्डार हो या कङ्काल, वह मेरा पति होगा। अब मैं किसी दूसरे पुरुष को वरण नहीं कर सकती।"

सावित्री की बातें सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'राजन् ! सावित्री बुद्धि की ही देवी है। उसकी बुद्धि अत्यन्त सात्विक है। उसको अपने धर्म-मार्ग से हटाया नहीं जा सकता। इसलिए सत्यवान के साथ उसका विवाह कर देना ही उचित है।'

अब राजा भी सावित्री से सहमत हो गये और विवाह की सामग्री लेकर राजा द्युमत्सेन के आश्रम में पहुँचे। द्युमत्सेन ने पूछा—"कहिए आपके पधारने का क्या कारण है ?" अश्वपति ने उत्तर दिया—"मेरी सावित्री नाम की कन्या है। उसने आपके पुत्र को वर लिया है। इसलिए आप उसे पुत्र वधू के रूप में स्वीकार कीजिये।"

द्युमत्सेन ने कहा—"हमारा राज्य छिन चुका है और बन में तपस्वियों की तरह रहते हैं। राजमहल में रहने वाली आपकी कन्या बन में रहने योग्य नहीं है। अश्वपति बोले—"सुख दुःख आते जाते रहते हैं। इसकी हमें भली प्रकार जानकारी है। हम इन सब बातों पर विचार करके ही यहाँ आये हैं।" अब द्युमत्सेन के पास कोई उत्तर नहीं था। ब्राह्मणों को बुला कर विवाह संस्कार कराया गया। अश्वपति विवाह के बाद लौट गये। सावित्री ने पिता के आभूषण उतार दिये और वल्कल वस्त्र पहने।

सावित्री सर्वगुण सम्पन्न थी। वह उचित समय पर अपने

पतिदेव, सास और ससुर सभी की सेवा करती थी जिससे सभी उससे प्रसन्न थे।

समय बीतता गया। वह किसी की बाट नहीं देखता। आखिर वह दिन आ ही गया जब सत्यवान की मृत्यु होने वाली थी। जब चार दिन रह गये तो सावित्री ने तीन दिन का व्रत किया और चौथे दिन जब दैनिक कृत्यों से निवृत हो गई तो देखा कि सत्यवान कन्धे पर कुल्हाड़ी रखे लकड़ियां काटने जा रहे हैं। उसने पति से कहा कि—"आज मैं भी आपके साथ वन को जाऊँगी।" सत्यवान ने कहा कि—"तुम तो तीन दिन की भूखी हो। इसलिए तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। थक जाओगी और रास्ता भी बहुत कठिन है। सावित्री ने बल पूर्वक कहा—"मैं आज अवश्य जाऊँगी।" सत्यवान ने कहा—यदि जाना ही है तो माता व पिताजी की आज्ञा ले लेना आवश्यक है।

यह सुनकर सावित्री अपने सास ससुर के पास गई और प्रणाम करके अपने पति के साथ वन में जाने के लिए आज्ञा माँगने लगी। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

पति-पत्नी वन में गये, वहाँ उन्होंने खाने के लिए फल बीने। फिर सत्यवान लकड़ियाँ काटने लगा। लकड़ियाँ काटते-काटते उसके सिर में दर्द हुआ और उसे विश्राम करने की इच्छा हुई। पत्नी से कहा--प्रिय ! मेरे सिर दर्द हो रहा है। मुझे सोने की इच्छा हो रही है।" सावित्री ने सत्यवान को वहीं पेड़ की छाया के नीचे लिटाया और उसका सिर दबाने लगी। इतने में उसे एक बिशालकाय पुरुष हाथ में पाश लिये दिखाई दिया। सावित्री ने पूछा--"आप कौन हैं और यहाँ क्यों आये हैं?" उस पुरुष ने उत्तर दिया--"मैं यमराज हूँ! तुम्हारे पति की आयु समाप्त हो चुकी है। इसलिए उसे लेने के लिए आया हूँ।" सावित्री ने कहा—"प्रभु ! मनुष्यों को लेने के लिए तो आप दूतों को भेजते हैं, आप स्वयं कैसे पधारे !" यमराज बोले—

"तेरा पति महात्मा और गुणों का भण्डार है। यह दूतों द्वारा ले जाने योग्य नहीं है। इसलिए मैं अपने आप आया हूं।'

इसके पश्चात् वे सत्यवान के शरीर से अंकुष्ठ मात्र परिणाम वाले सूक्ष्म शरीर धारी जीवात्मा को निकाल कर चल दिये। यमराज ने जब सावित्री को अपने पीछे आते देखा तो उससे कहा तुम लौट जाओ और अपने पति का अन्त्येष्टि संस्कार करो। सावित्री ने उत्तर दिया—"पति और पत्नी अभिन्न आत्मा होते हैं। जहाँ वह जायेंगे, वहाँ मैं भी जाऊँगी, यही मेरा धर्म है। तप, व्रत, पतिव्रत धर्म, मंत्र शक्ति और गुरु भक्ति से मैं सभी स्थानों में जा सकती हूँ। इसलिए मैं अपने पति के साथ ही जाऊँगी।"

सावित्री की बातों से यमराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले—"तुम से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त मैं तुम्हें एक वर दे सकता हूँ।" सावित्री ने अवसर का लाभ उठाया और कहा—'मेरे ससुर का राज्य छीना गया है। उनके नेत्रों की ज्योति भी जाती रही है। कृपया उनकी नेत्र ज्योति लौटा दें और उन्हें बल व तेजस्विता प्रदान करें।" यमराज ने कहा—"ऐसा ही होगा। अब तू लौट जा ताकि तुझे विशेष श्रम न हो।" सावित्री बोली—"पति के साथ रहकर तो प्रसन्नता होती है। वहाँ श्रम का क्या प्रश्न? जहाँ वह रहेंगे, वहीं मैं रहूँगी।

यमराज सावित्री की मधुर वाणी से बहुत प्रभावित हुए और कहने लगे—"सत्यवान को जीवित करने के सिवा कोई एक वर माँग ले।" सावित्री को अपने ससुर से अनुराग था, सोचकर बोली—"मेरे ससुर का राज्य छीना गया है, वह उनको वापिस मिल जाये।" यमराज ने कहा—"तथास्तु ! परन्तु अब तुम लौट जाओ।" सावित्री ने कहा—"आपको यम इसलिए कहते है कि आप सारी प्रजा को नियम में रखते हैं। सत्पुरुषों का यह धर्म है कि वह मन, वचन व कर्म से प्राणी-

मात्र के हित में लगे रहते हैं, किसी को दु:ख नहीं देते, सब पर दया करते हैं।"

यमराज प्रसन्न हुए और तीसरा वर दिया। सावित्री ने सौ भाई का वर माँगा। इसी प्रकार से उनकी बातचीत चलती रही और सावित्री को जब चौथा वर प्राप्त हुआ तो उसने अपने सौ पुत्र होने की इच्छा की जो यमराज द्वारा स्वीकार कर ली गई। अब सावित्री ने कहा—"आपके इस आशीर्वाद की पूर्ति तभी हो सकती है जब मेरे पति जीवित हो जायें।" यमराज अब तो विवश हो गये और उन्होंने सत्यवान के बन्धन खोल दिये। वह उठ खड़े हुए और पति-पत्नी अपने आश्रम को लौट गये।

उपरोक्त कथा निम्न तथ्यों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है:—

(१) राजा अश्वपति ने सावित्री की उपासना की थी। सावित्री गायत्री का ही दूसरा नाम है। गायत्री सद्बुद्धि का श्रेष्ठतम मन्त्र है। साधना आरम्भ करते ही साधक के मन: क्षेत्र में एक हलचल मच जाती हैं और जन्म जन्मान्तरों से जमी आसुरी प्रवृत्तियां उखड़ने लगती हैं, उसे सत्य, असत्य, न्याय, अन्याय के निर्णय करने की विवेक बुद्धि प्राप्त होती है जिसके प्रकाश में वह सत्पथ पर निरन्तर आगे बढ़ता ही जाता है। गायत्री के उज्ज्वल प्रकाश में वह कुकर्मों और पापों से बचा रहता है, अपनी तामसिक वृत्तियों का शमन करता हुआ सात्विकता के साम्राज्य में प्रवेश करता है। अश्वपति को भी गायत्री माता का अनुग्रह प्राप्त हुआ। उनका प्रत्येक कार्य विवेक की अनुभूतियों की बोलती तस्वीर दिखाई देता था। उन्होंने इस आदर्श को अपने तक सीमित नहीं रखा वरन् जनता में इसका व्यापक प्रचार करवाया, जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भरसक प्रयत्न किया। प्रचार के साथ प्रचारक का स्वयं का आचार जनता को प्रभावित करता है। अश्वपति स्वयं सात्विकता और सज्जनता का

आदर्श थे। इसलिए वह अपनी प्रजा पर अपने गुणों की छाप छोड़ सके। जनता ने उनका अनुकरण किया और घर-घर में दिव्यत्व के दर्शन होने लगे। इसलिए कहा जाता है कि उनके राज्य में कोई चोर और व्यभिचारी व्यक्ति नहीं था और कोई ऐसी स्त्री नहीं थी जो परपुरुष को कुदृष्टि से देखती हो। पवित्र वातावरण में कोई तामसिक वृत्तियों का व्यक्ति आ जाता है तो उसे अपने कार्यों पर ग्लानि होती है और अपने को हीन दृष्टि से देखने लगता है। यह हीन-भावना उसे दुष्कर्म छोड़ने में सहायक सिद्ध होती है। अश्वपति ने चारों ओर सात्विक वातावरण का निर्माण किया। इसलिए उनका राज्य एक आदर्श राज्य माना जाता है। इसका श्रेय उनकी गायत्री उपासना को ही है।

(२) सावित्री की उपासना से उन्हें एक कन्या की प्राप्ति हुई। इसे वह सावित्री का ही वरदान मानते थे। इसलिए उस कन्या का नाम भी उन्होंने सावित्री रखा। माता और पिता के जैसे विचार होते हैं, उनकी सन्तान भी वैसे ही गुणों से सम्पन्न उत्पन्न होती है। सावित्री अश्वपति का ही दूसरा रूप थी। क्यों न हो पिता की छाप उस पर पड़नी ही थी।

(३) सावित्री एक राजा की लड़की थी, उसे किसी राजा के लड़के को ही अपना पति वरण करना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। एक वनवासी तपस्वी उसके चुनाव में खरा उतरा। उसे यह इच्छा नहीं थी कि उसका जीवन राजमहल की रङ्गीनियों में व्यतीत हो, वह तो अपने अनुकूल गुणों के पुरुष को अपनाना चाहती थी। इसलिए उसने राज्य पर ठोकर मारी और गुणों के गले में जयमाला पहिनाई। इससे विदित है कि उस समय लोगों का दृष्टिकोण धनिकों से नहीं वरन् श्रेष्ठ व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करने का था। सावित्री तो सत्यवान को ही वरण करती है, झूठ, चोर, लम्पट, छली उसे कभी प्रिय नहीं हो सकते। उसे तो सत्यवान—सत्य पर आरूढ़ व्यक्ति प्रिय होगा, चाहे सांसारिक दृष्टि से वह कितना ही छोटा हो।

(४) जब महर्षि नारद सत्यवान की एक वर्ष की आयु की घोषणा करते हैं तो स्वभावत: साधारण स्त्री को अपने निश्चय से विचलित हो जाना चाहिए था परन्तु सावित्री दृढ़ प्रतिज्ञ थी। उसमें परिणामों के साथ लोहा लेने की शक्ति और सामर्थ्य थी। वह परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए तैयार थी। एक वर्ष बाद अपने भावी पति के समाचार सुनकर यह शोक सागर में नहीं डूब गई वरन् चट्टान की तरह अपने निश्चय पर अटल रही। इससे मानसिक व आत्मिक शक्तियों का परिचय मिलता है।

(५) जब अश्वपति ने कहा कि "बेटी ! जिस वर की मृत्यु एक वर्ष के बाद होने वाली हो, उसके साथ विवाह करना उचित नहीं प्रतीत होता" तो सावित्री ने कहा—"पिता जी ! भारतीय नारी केवल एक बार ही अपने पति का वरण करती है।" इससे भारतीय नारियों की नीति पर प्रकाश पड़ता है। पश्चिम में एक दिन में अनेकों पति बदलने की स्वतन्त्रता है। वहां तलाक की समस्या सुरसा का-सा रूप ले रही है और वहाँ का गृहस्थ जीवन बिल्कुल अस्त-व्यस्त है। भारतीय संस्कृत में विवाह का उद्देश्य केवल भोग-विलास और सन्तान उत्पत्ति ही नहीं है वरन् अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ना है। सावित्री ने भी उसी पथ का अनुकरण किया।

(६) आज का वैज्ञानिक तर्क तो सावित्री के विरोध पक्ष में ही अपनी राय प्रकट करेगा कि जिस पति के बारे में पूर्ण निश्चय हो कि उसकी मृत्यु एक वर्ष बाद हो जाएगी, उससे विवाह करना और एक वर्ष बाद वैधव्य की अग्नि में जलना सर्वथा अनुचित है। परन्तु वह नहीं जानते कि वीर पुरुष मृत्यु से अठखेलियाँ करते हैं, वह हँसते-हँसते उससे जूझना ही जीवन मानते हैं मृत्यु से डरना तो कायरता है। मृत्यु से डरने वाले क्षत्रियों को क्षत्राणियों ने चूड़ियाँ पहना कर उत्साहित किया था और वह स्वयं रणक्षेत्र में चण्डी का रूप लेकर कूदी हैं। सावित्री भी क्षत्राणी थी। एक क्षत्रिय का खून उसकी नस-नस में उबल रहा

था। वह आगे बढ़कर पीछे हटना नहीं जानती थी। उसने तो तूफानों से मुँह मोड़ना सीखा ही न था। पहाड़ों की बुलन्दियों पर चढ़ने का अभ्यास किया था। उसमें तो आत्म-विश्ववास कूट-कूट कर भरा हुआ था। शोक की एक रेखा भी उसके मुख पर दिखाई नहीं दी। इसके विपरीत उसका आत्म-विश्वास जाग उठा और वह परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए उतारू हो गई। यह आत्म-विश्वास की उच्चतम सीमा कही जा सकती है। गायत्री साधना से ऐसी ही स्थित्रि उत्पन्न होती है और यही साधना की सफलता मानी जाती है।

(७) नियत समय पर यमराज आए और सत्यवान के जीवात्मा को लेकर चल दिए। सावित्री भी उनके पीछे-पीछे गई और अन्त में सत्यवान को मृत्यु के पाश से छुड़ा लिया। वह यम अर्थात् मृत्यु से डरी नहीं, उससे संघर्ष करती रही। वास्तव में गायत्री साधक को ऐसी ही निर्भयता प्राप्त होती है। उसने अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र कर लिया होता है। मृत्यु को सामने देखकर उसे कुछ भी पश्चात्ताप नहीं होता। कहते हैं मृत्यु का समय हजारों बिच्छुओं के डङ्क मारने के समान होता है क्योंकि अपने जीवन के सारे दुष्कर्म चित्र रूप में सामने दीखने लगते हैं। जब वह उनके परिणामों का बिचार करता है तो भयभीत हो जाता है और उसे महान कष्ट होता है। जिस गायत्री साधक के जीवन में निरन्तर सात्विकता की निर्झरणी बहती रही हो, वह मृत्यु को हँसते-हँसते गले लगाता है और सोचता है—इन जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को उतारने में मुझे क्या आपत्ति है, इसमें भय और कष्ट की कौन-सी बात है। साबित्री भी इस उच्च स्थिति तन पहुंच चुकी थी।

(८) सावित्री अर्थात् गायत्री ने सत्यवान के प्राणों की रक्षा की। वास्तव में यह तो गायत्री की प्रमुख विशेषता ही है। इसीलिए उसका नाम गायत्री पड़ा। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है—"गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री" अर्थात् जो 'गय' (प्राणों की) रक्षा करती है, वह

गायत्री है। महर्षि भारद्वाज, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ ने इसकी पुष्टि की है। वृहदारण्यकोपनिषद् (५।१४।४) व अग्नि पुराण (२१६।१।२) में भी गायत्री शब्द का यही अर्थ किया गया है।

प्राण वह तत्व है जो हमारे शरीर में क्रियाशीलता और चैतन्यता लाता है। इसकी कमी से रोग और दुर्बलता उत्पन्न होती है, मनमें आलस्य, भय, निराशा, आशंका उत्पन्न होती है। न्यून प्राण व्यक्ति कोई बड़ा कार्य करने का साहस नहीं कर सकता। विवेक के अभाव में उनकी समस्त उपार्जित शक्तियाँ क्षीण होने लगती हैं और वह एक सूखे वृक्ष की तरह निस्तेज हो जाता है। गायत्री वह विवेक-बुद्धि प्रदान करती है जिससे वास्तविकता को—तत्व को जाना जा सकता है ताकि वह सत्य और असत्य का निर्णय कर सके। भोग-विलास व अन्य आवश्यक कार्यों में जो शक्ति का ह्रास हो रहा होता है, उसे गायत्री बचाती है, पाप पंक में फँसे व्यक्ति को वह सन्मार्ग पर लाती है, पापों की दुर्गन्ध से जो घुटन हो रही थी, उससे उसे छुटकारा मिलता है और सत्य के साम्राज्य में स्वतन्त्रता पूर्वक साँस लेता है, अन्धकार से प्रकाश में आने पर वह मानसिक प्रफुल्लता का अनुभव करता है। गायत्री उसके प्राणों को सतेज करती है तो उसके मन में नई उमङ्गों और आशाओं का समुद्र उछाल मारता है। वह प्रत्येक कार्य को जोश और साहस के साथ करता है। फल स्वरूप निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ता रहता है।

(६) सत्यवान अल्पायु होते हुए भी दीर्घायु को प्राप्त हुआ। शारीरिक रोगों के बाहरी व उत्तेजक कारण आहार विहार, सर्दी गर्मी भले ही हों परन्तु मूल कारण प्राणों की निर्बलता ही होती है और हमारे आन्तरिक शत्रु काम, क्रोध, मद, लोभ आदि निरन्तर प्राण शक्ति पर आघात करते हैं। क्रोध से नसें जलने लगती हैं, ईर्ष्यालु व्यक्ति को तो शास्त्रों ने मृत तुल्य माना है। द्वेष से भी मानसिक जलन होती है,

काम से शक्तियों का अपव्यय होता है। जो व्यक्ति इनके चंगुल में फँस जाता है वह दिन-दिन निष्प्राण होता जाता है और उसे कोई भी बाहरी प्रभाव दवाकर रोगी बना सकता है। परन्तु जब वह व्यक्ति सत्यवान बन जाता है, उसे इन शत्रुओं से छुटकारा मिल जाता है, उसकी शक्तियों का अपव्यय रुक जाता है तो वह सौ वर्ष तक जीवित रहने की प्रबल आशा करता है। वह दीर्घायु होता है।

वास्तव में बुरे विचार व कार्य ही हमारी आयु को क्षीण, करते हैं। महात्मा हैनीमेन ने अपनी पुस्तक "आर्गेनन आँफ मेडीसन" में लिखा है कि—"evil willing, acting and understanding are root cause of each and every disease in the world." अर्थात्, संसार में प्रत्येक रोग का मूल कारण व्यक्ति के बुरे विचार, कार्य और इच्छाएँ ही हैं। महर्षि चरक ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है। गायत्री की विवेक बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी कहा ही जाता है। यह बुरे विचार और कार्यों पर अंकुश रखती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा के प्रकाश में पवित्र विचारों से ओत-प्रोत व्यक्ति निश्चित रूप से स्वस्थ्य रहेगा और दीर्घायु को प्राप्त होगा।

(१०) जिसे सावित्री वरण कर ले, ऐसा सत्यवान साधक अजर-अमर हो जाता है। यम उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। सत्य के तेज में यम निस्तेज हो जाते हैं। शास्त्र भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं यथा—"गायत्री परमात्मा है" (गायत्री तत्व श्लोक ८)। गायत्री ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही गायत्री है (ऐतरेय ब्राह्मण २७।५, शतपथ ब्राह्मण ८।५।३।७)। यह विश्व जो कुछ भी है, समस्त गायत्री मय है (छांदोग्योपनिषद)। गायत्री और ब्रह्म में भिन्नता नहीं है (व्यास)। छन्दों में गायत्री में हूँ (गीता १९।३५)। गायत्री से ब्रह्म प्रकाशित होता है अर्थात् ज्ञान होता है। गायत्री मोक्ष देने वाली, परमात्मा स्वरूप और ब्रह्म तेज से युक्त शक्ति है (देवी भागवत ६।१।४२)।

मोक्ष का मूल कारण है और सारूप्य मुक्ति का स्थान है (ऋषि भृङ्ग)।

ऋषि अपने अनुभव से बताते हैं कि गायत्री अपने साधक में इतना प्रकाश भर देती है, उसके आत्मिक स्तर को इतना ऊँचा उठा देती है कि उसका ब्रह्म से एकाकार हो जाए, वह जीवन मुक्त हो जाए। फिर यम उसके पास आने का साहस भी नहीं कर सकता।

उपरोक्त कथा गायत्री मन्त्र की विधि विधान पूर्वक साधना के विभिन्न प्रकार के लौकिक व पारलौकिक लाभों पर प्रकाश डालती है। सावित्री स्वयं गायत्री रूपा थी, उसका जीवन गायत्रीमय था, वह गायत्री की शक्तियों व सिद्धियों से ओत प्रोत थी। उसके जीवन की समस्त गतिविधियाँ गायत्री शक्ति से प्रेरित थीं। गायत्री की अनन्य साधना से कोई भी साधक इस कथा में वर्णित लाभों को प्राप्त कर सकता है। गायत्री साधना से प्राप्त शक्ति के फलस्वरूप ही सावित्री ने यमराज (अर्थात् मृत्यु) से लोहा लेने की सामर्थ्य प्राप्त की।

शंकाओं का मौन समाधान

आज से लगभग ८०-८५ वर्ष की बात है, मथुरा में किशोरी-रमण कालेज के निकट एक टीले पर एक महात्मा ने गायत्री की घोर तपस्या की। इस टीले का नाम बाद में गायत्री टीले के नाम से प्रख्यात हो गया। वहाँ गायत्रीजी की एक पंचमुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। अलवर राज्य के मूल निवासी उन महात्मा बूँदी सिद्ध महाराज ने एक करोड़ गायत्री का जाप किया। स्मरण रहे प्राचीन काल में जो साधक एक करोड़ गायत्री का जाप निष्ठापूर्वक करता था, उसे वशिष्ठ की उच्चतम और सम्मान्य पदवी से भूषित किया जाता था। क्योंकि ऐसी मान्यता थी कि इस साधना से वह निश्चित रूप से परम सिद्ध

हो जाता है। इन महात्मा ने भी मौन रहकर सम्पूर्ण साधना सम्पन्न की। इससे उनको आत्म साक्षात्कार हुआ और अनेकों प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हुईं। जिन्होंने उनके दर्शन किये हैं, वे बताते हैं कि उनका तेज अवर्णनीय था। वह सदैव मौन तो रहते ही थे। जब भी कोई जिज्ञासु शंका समाधान के लिए उनके पास आता था तो महर्षि रमण की तरह यहाँ भी उसे अपनी शंकाओं का मौन समाधान स्वयमेव हो जाता था। महाराज धवलपुर और महाराज अलवर उनकी ख्याति सुनकर स्वयं दर्शनार्थ आए थे। इससे उनकी ख्याति और भी बढ़ गई। उनकी सिद्धियों की अनेकों घटनायें प्रसिद्ध हैं, अनेकों भूत प्रेत ग्रस्त स्त्री पुरुषों को उन्होंने आरोग्य प्रदान किया था जिस व्यक्ति को जो भी आशी-र्वाद उन्होंने दिया, वह सफल ही रहा। अनेकों मृत व्यक्तियों की उन्होंने प्राण रक्षा की संतानहीनों को संतान दी और धनहीनों को धनबान बनाया। कई बार उन्होंने हजारों चतुर्वेदियों के भंडारे किए। परन्तु किसी से भी आर्थिक व्यवस्था की याचना नहीं की। इससे सभी को आश्चर्य होता था कि बिना मांगे इतने रुपये की व्यवस्था कैसे हो गई। कहते हैं वे अपने शरीर पोषण के लिए भिक्षाटन के लिए कहीं भी नहीं जाते थे। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयमेव होती रहती थी।

जीवन के हर क्षेत्र में सफलताएँ ही सफलताएँ

एक बार अगस्त्य जी जब मलयाचल पर भगवान विष्णु की उपासना में संलग्न थे तब शुकदेवजी उनके दर्शनार्थ वहाँ गये। धर्म चर्चा में अजामिल की कथा का प्रसंस आया। इस पर अगस्त्य जी ने

शुकदेवजी को अजामिल की पूरी कथा सुनाई कि किस प्रकार से अपने लड़के नारायण को पुकारने से ही यमदूत भाग गये। क्योंकि नारायण नाम का कीर्तन सुनकर विष्णुदूत वहाँ पहुंच गये थे।

वास्तव में अजामिल कोई भगवद्भक्त नहीं था। अत्यन्त क्रूर और पापी था। काम वासनाओं का ताण्डव नृत्य सदैव उसके मन मन्दिर में होता रहता था। इसी के फलस्वरूप अपनी स्त्री और माता पिता को त्यागकर उसने एक अन्य शूद्रा स्त्री को घर में रख लिया था। उससे उसको कई पुत्र हुए। एक बार एक सन्त उनके घर आए और उन्होंने उसके छोटे पुत्र का नाम नारायण रख दिया। कुछ समय के बात अजामिल को अपनी मृत्यु निकट दिखाई दी। उसे ऐसा लगा जैसे यमदूत उसे लेने के लिए आए हैं। यमदूतों को देखकर अजामिल भय से काँपने लगा और उसने सहायता के लिए अपने छोटे पुत्र नारायण को बुलाया। उसके न आने पर उसे कई बार नारायण-नारायण कहना पड़ा। नारायण नाम का उच्चारण सुनकर यमदूत भाग गये क्योंकि नारायण नाम का कीर्तन सुनकर विष्णु दूत वहाँ पहुंच गये थे।

इस पौराणिक कथा पर बुद्धिवादियों को सहसा विश्वास नहीं होता कि अनजाने में भगवान का नाम लेने पर कैसे मृत्यु से बचा जा सकता है। यदि इसे प्रतीक कथा मान लें तो यमदूतों और मृत्यु को अन्धकार का और भगवान व उनके नामोच्चारण को प्रकाश का प्रतीक माना जा सकता है। प्रकाश के आते ही अन्धकार का नाश स्वाभाविक है। साधक भगवद् उपासना में संलग्न होकर जब सद्वृत्तियों का विकास करता है तो धीरे-धीरे उसकी संस्कार जन्य कुप्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। मृत्यु के समय जब सारे जीवन का चित्र आंखों के सामने आता है तो उसके कुपरिणामों की कल्पना करके व्यक्ति भावी नाटकीय यन्त्रणाओं की कल्पना करके भयभीत हो जाता है। जिस

व्यक्ति का जीवन सत्कार्यों से ओत प्रोत रहा हो, वह अपने प्राणों का त्याग शांति पूर्वक करता है। उसे भावी जीवन की कोई निराशा नहीं होती वरन् नवीन आशाओं को लेकर केवल वस्त्र बदलने मात्र की बात सोचता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति का मृत्यु के प्रतिनिधि यमदूतों से भय-भीत होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

यह केवल प्रतीक कथा ही हो ऐसी बात नहीं है इसकी पुष्टि महामना मालवीय जी के अनुभवों से की जा सकती है। एक बार मालवीय जी मासिक कल्याण के संपादक श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार के यहाँ कुछ दिन के लिए ठहरे। एक दिन मालवीय जी ने पोद्दार जी को एक दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तु देने की इच्छा व्यक्त की जो उन्हें अपनी माता से वरदान के रूप में प्राप्त हुई थी। उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसा की और आधे घन्टे तक उसके ही गुण गाते रहे। पोद्दार जी उत्सुकता बढ़ने लगी और उसे शीघ्र ही देने का अनुरोध किया। तब मालवीय जी ने कहना शुरू किया "लगभग चालीस वर्ष पहले मैंने अपनी माता जी से एक बार प्रार्थना की आप मुझे ऐसा वरदान दें कि जिससे मुझे कहीं भी असफलता का मुँह न देखना पड़े। तब माता जी ने बड़े स्नेह ने सर पर हाथ रखते हुए कहा था कि बेटा जहाँ जाओ नारायण-नारायण का उच्चारण कर लिया करो तुम्हें सदैव सफलता के ही दर्शन होंगे।"

माता जी का दिया हुआ यह मन्त्र मैंने परम श्रद्धा और निष्ठा से ग्रहण किया। उसके बाद से नारायण का उच्चारण करना तो मेरा स्वभाव ही बन गया है। मैं नहीं जानता इस महामन्त्र के प्रभाव से मुझे कभी भी किसी कार्य में असफलता दिखाई दी हो। माता जी की दी हुई यह दुर्लभ वस्तु मैं तुम्हें दे रहा हूं।

श्री पोद्दार जी लिखते है कि नारायण मन्त्र का उच्चारण उनका भी एक स्वभाव बन गया है। जब कभी वह घर से निकलते

हैं तो, उनके बच्चे भी नारायण-नारायण पुकारने लगते हैं। इसके प्रभाव से चारों ओर उन्हें सफलता ही सफलता के दर्शन होते हैं।

* * *

जटिल समस्याओं की सहज निवृत्ति

एक बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हो रहा था जिसमें महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और महामना मालवीय जी जैसे सभी अग्रगण्य नेता सम्मिलित थे। किसी विषय पर आपसी मतभेदों के कारण गतिरोध चल रहा था। मतभेद इतने बढ़ते जा रहे थे जिससे यह प्रतीत होने लगा था कि आज ही कांग्रेस के दो गुट हो जाएंगे। स्वाभाविक था कि दो गुटों में बँट जाने से संस्था का पहले जैसा प्रभाव तथा शक्ति न रहती। मालवीय जी इस विभाजन की आशंका से बहुत चिंतित थे और चाहते थे कि इसके बीच का कोई ऐसा मार्ग निकल आए जो दोनों गुटों को मान्य हो। परन्तु उनके मस्तिष्क में भी कोई ऐसी योजना न आ सकी।

गांधी जी ने भी बहुत प्रयत्न किया परन्तु कुछ परिणाम न निकला। अभी अधिवेशन की कार्यवाही चल रही थी और कुछ समय के बाद एक बड़े विस्फोट की अनुभूति सभी को प्रतीत हो रही थी। मालवीय जी बीच में से उठकर चले गये और एक अलग कमरे में बैठकर आर्त भाव से गजेन्द्र स्तोत्र का पाठ करने लगे। तीन पाठ उन्होंने किए ही थे कि उन्हें समस्या का समाधान मिल गया। एक नई योजना उनके मस्तिष्क में आई। उसको उन्होंने सभी सदस्यों के

सामने रखा। किसी को भी उस पर आपत्ति न हुई और सभी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस तरह से देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने वाली एकमात्र और शक्तिशाली संस्था दो गुटों में बटने से बची। यदि उस समय कांग्रेस का विभाजन हो जाता तो निश्चय ही उन दोनों की शक्ति क्षीण हो जाती और शायद भारत का भविष्य वह न होता जो हम आज देख रहे हैं।

पार्वती की तपसाधना सफल हुई

रामचरित मानस में शिव पार्वती के लौकिक विवाह का वृतान्त इस प्रकार है:—

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब सती से अपने पति का अपमान न सहा गया तो वह यज्ञ कुण्ड में स्वाहा हो गई। उन्होंने हिमाचल के घर पार्वती के शरीर से जन्म लिया। जब पार्वती कुछ बड़ी हो गई तो एक दिन देवर्षि नारद वहां पधारे। हिमाचल ने उनसे पार्वती के गुण दोष पूछे। नारद ने इस प्रकार पार्वती के गुणों का वर्णन किया:—

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी।
सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुन्दर सहज सुसील सयानी।
नाम उमा अम्बिका भवानी॥
सब लच्छन सम्पन्न कुमारी।

होइहि संतत पियहि पियारी ॥
सदा अचल एहिकर अहिवाता ।
एहि तें जसु पैहहिं पितु माता ॥
होइहि पूज्य सकल जग माही ।
ऐहि कहँ जब दुर्लभ कछु नाहीं ॥
एहि कर नाम सुमिरि संसारा ।
तिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा ॥

पार्वती को मिलने वाले पति के अवगुणों का वर्णन करते हुए नारद ने कहा:—

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारो ।
सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पित हीना ।
उदासीन सब संसय छीना ॥

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमङ्गल वेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त अस रेख ॥

पार्वती के भावी पति के यह अवगुण सुनकर दक्ष को दुःख हुआ । पार्वती को प्रसन्नता हुई । हिमवान ने उसका कोई उपाय पूछा । नारद ने कहा—भाग्य की रेखा तो नहीं बदली जा सकती है । पार्वती के जिस तरह के पति का मैंने वर्णन किया है, वह तो उसे अवश्य मिलेगा । परन्तु जो दोष मैंने बताए हैं, वह बस शिवजी में ही है । यदि उनसे विवाह हो जाए तो उनके यह दोष गुण ही समझे जाएंगे क्योंकि समर्थ को दोष नहीं होता:—

जे जे वर के दोष बखाने ।
सब सब महि मैं अनुमाने ॥

जों बिबाहु संकर सन होई।
दोषउ गुन सम कह सबु कोई ।।
जो अहि सेज सयन हरि करहीं।
बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं ।।
भानु कृसानु सर्व रस खाहीं।
तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ।।
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई।
सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ।।
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं।

नारद ने सुझाव दिया कि यदि पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिए तप करे तो वह प्रसन्न हो जाएँगे और वह भावी को मिटाने की सामर्थ्य रखते हैं।

संभु सहज समरथ भगवाना।
एहि बिबाहँ सब विधि कल्याना ।।
दुराराध्य पै अहहिं महेसू।
आसुतोष पुनि किएँ कलेसू ।।
जों तपु करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ।।
जद्यपि बर अनेक जग माहीं।
एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ।।

हिमवान और मैंना को भी यह बात उचित लगी। पार्वती को भी एक ब्राह्मण ने स्वप्न में यही उपदेश दिया—

'तप से ही सृष्टि की रचना, पालन और संहार होता है, इसलिए तप करो।"

करहि जाइ तपु सैलकुमारी।
नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहिं पुनि यह मत भावा।
तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥
तपवल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल विष्णु सकल जग त्राता॥

पार्वती ने घोर तपस्या भी की। शिव मंत्र की उत्कट साधना की। मूल, व फल साग खाकर रही जल और वायु का भोजन किया सूखे वेल, पत्तों पर निर्वाह किया। फिर सूखे पत्ते भी छोड़ दिए।

उर धरि उमा प्रान पति चरना।
जाइ विपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू।
पति पद सुमिर तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा।
बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
संवत सहस मूल फल खाए।
साग खाइ सत बरस गँवाए॥
तपवल संभु करहिं संघारा।
तपवल सेषु धरइ महिभारा॥
तप अधार सृष्टि भवानी।
करहिं जाइ तपु अस जिय जानी॥

सुनत बचन बिसमित महतारी ।
सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ।।
कछु दिन भोजनु बारि बतासा ।
किए कठिन कछु दिन उपवासा ।।
बेल पाती महि परइ सुखाई ।
तीनि सहस संवत सोइ खाई ।।
पुनि परिहरे सुखानेउ परना ।
उमहि नामु तब भयउ अपरना ।।

घोर तप के बाद आकाश वाणी हुई कि तुम्हारा तप सफल हुआ । अब तुम्हें शिवजी मिलेंगे ।

शिव मन्त्र के जप और साधना के फल स्वरूप पार्वती को इच्छित वर की प्राप्ति हुई । मन्त्र साधना से कोई भी कुमारी कन्या अपने स्वभाव और स्वप्नों के अनुरूप अभीष्ट पति की प्राप्ति कर सकती है ।

* * *

आन्धी का वेग शान्त हुआ

ग्राम बरहज बाजार जि० देवरिया में १९३४ में एक विष्णु यज्ञ का आयोजन किया गया जिसके आचार्य वाराणसी के पं० विद्याधर जी गौड़ थे । यज्ञ का पांचवां दिन था । दिन के चार बजे हवन कुण्ड में आहुतियाँ दी जा रही थीं । अग्नि प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित हो रही थी । यज्ञ शाला के चारों ओर जनता की काफी भीड़ एकत्रित थी । इतने में सरयू की आधी धारा तक तीव्र वेग से आंधी के आने की

सूचना मिली। लोगों को भय उत्पन्न हुआ कि कुछ ही देर में आन्धी यज्ञ शाला तक पहुँच जायेगी तो यज्ञ अग्नि भीषण रूप धारण करके यज्ञ शाला को भस्म कर सकती है। यह यज्ञ में एक विघ्न तो होगा ही हानि भी होगी और यज्ञ के विरोधी लोगों को टिप्पणी करने का एक अच्छा अवसर मिल जायेगा। आचार्य महोदय ने जनता को आश्वासन दिया कि वेद मन्त्रों के पाठ में इतनी शक्ति है कि वे इस आन्धी के प्रवल वेग को शांत कर सकते हैं। वेद पाठ आरम्भ हुआ। वहाँ उपस्थिति लोगों ने देखा कि आंधी का वेग पाँच मिनट में ही शान्त हो गया है और आंधी का वह वेग सरयू की आधी धारा तक ही सीमित रह गया, आगे नहीं बढ़ पाया। इस चमत्कार पूर्ण घटना से वहाँ उपस्थित नास्तिक और यज्ञ के विरोधी लोग भी यज्ञ के पक्षपाती हो गये।

★★★

ब्रह्म तेज की प्राप्ति

कल्याण गोरखपुर के सन्त अंक में वर्णित घटना के अनुसार हरे-राम-नाम के एक ब्रह्मचारी तपस्वी गङ्गा के भीतर पड़ी एक ठेकरी पर गायत्री साधना करते थे। उनकी साधना सूर्य-निकलने से छः घड़ी पूर्व आरम्भ हो जाती। सूर्य की ओर मुख करके वे लगातार कई घन्टों तक गायत्री का जाप करते ही रहते थे। साधना के फलस्वरूप उनके मुख पर अद्भुत तेज चमकने लगा था जिसे ब्रह्म तेज की संज्ञा दी जा सकती है। उन्हें अनेकों प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हुई थीं जिससे वे विपत्तिग्रस्त लोगों के दुःखों को दूर करते रहते थे।

—•—

राम को विजय भी प्राप्त हुई

भगवान राम ने रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए महर्षि अगस्त्य के परामर्श से 'आदित्य हृदय' की साधना की। शंकर का पूजन भी उन्होंने किया था और साधनों का अभाव होते हुये भी महान सफलता प्राप्त की थी।

★●★

गृहस्थ का सुव्यवस्थित संचालन

इन्दौर में एक दक्षिणी ब्राह्मण उठते-बैठते, चलते-फिरते निरन्तर निष्काम भाव से ॐ का जप किया करते थे। उनको गाने का भी शौक था, इसलिये उन्होंने अपने जप को सङ्गीतमय बना लिया था। वे मधुर कण्ठ से इस प्रकार गाया करते—

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ
भज मन ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

इस प्रकार गाने से एक वार छब्बीस "ॐ" का जाप होता था और गायन की सुन्दर ध्यनि से मन सर्वदा प्रसन्न रहता था। ॐ का अर्थ समझकर जप करने वाले साधक को ॐ का देवता साक्षात् दर्शन देता है, और उपासक उसमें लीन हो जाता है। जब उक्त दक्षिणी सज्जन से पूछा गया कि इन प्रकार "ॐ" के गायन से आपको कोई लाभ या चमत्कार जान पड़ा है?" तो उन्होंने उत्तर दिया "और कोई चमत्कार तो मैंने नहीं देखा, परन्तु मुझे अपने जीवन में किसी बात

की तङ्गी अथवा अशान्ति सहन करनी पड़ी। मुझे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह समय पर सहज में मिल जाती हैं। मेरी गृहस्थी सुख पूर्वक चलती है, यही मुझे एक महान चमत्कार मालूम पड़ता है।

★ ★ ★

आसुरी शक्तियां पराजित हुईं

गोपथ ब्राह्मण में वर्णित कथा के अनुसार एक वार असुरों ने इन्द्रपुरी को घेर लिया। इन्द्र अपने को उनका सामना करने में असमर्थ पाने लगे और किसी ब्राह्य शक्ति की खोज करने लगे। उन्हें 'ॐ' मिला। इन्द्र ने प्रार्थना की कि आप सर्वशक्तिमान हैं, आपकी सहायता से हम असुरों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। आप ही इस संकट को टाल सकते हैं।" 'ॐ' ने एक शर्त पर अपनी स्वीकृति दी कि 'ॐ' को पहिले पढ़े बिना ब्राह्मण वेद पाठ न करें। मेरे नाम को सर्व प्रथम पढ़ा जाया करे। यदि ऐसा न हो तो देवताओं द्वारा उसे स्वीकार न किया जाये।" देवताओं ने यह शर्त मान ली, ॐ ने उन्हें आदेश दिया कि सैनिकों ! आगे बढ़ो और ॐ का उच्चारण करते चलो। यह शब्द तुममें नई शक्ति और स्फूर्ति लाएगा। इससे तुम असुरों पर विजय प्राप्त करोगे। ऐसा ही हुआ। असुर-पराजित हुये और देवता विजयी। जिस व्यक्ति की मन रूपी इन्द्रपुरी को असुरों ने घेर रखा है, वह ॐ की सहायता का आह्वान करें ओंकार की सहायता से वह असुरों पर निश्चय रूप से विजय प्राप्त करेंगे और इन्द्रपुरी पर उनका एकछत्र राज्य स्थापित रहेगा।

चाणक्य ने नन्द राजा का तख्ता पलटा

मगध देश के नन्द राजा ने बिना कारण के चाणक्य का विरोध और अपमान किया व पदच्युत कर दिया। अन्यायी राजा के दुष्कृत्य का फल देने के लिये चाणक्य ने अथर्ववेद में मारण, तारण, उच्चाटन आदि मन्त्रों की विधिवत साधना की जिससे नन्द राजा के राज्य और वंश का जड़मूल से नाश हो गया और उसने चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य स्थापित किया। यह ऐतिहासिक घटना है।

★●★

उच्चकोटि के भव्य मन्दिर का निर्माण

लगभग डेढ़ सौ वर्ष से अधिक की बात है कि जयपुर में स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य नाम के एक उच्चकोटि के महात्मा निवास करते थे। उनकी आराधना से भगवान लक्ष्मीनारायण प्रसन्न हो गये और उनको स्वप्न में आदेश दिया कि मैं यहाँ भूमि के नीचे दबा हुआ हूँ। मुझे बाहर निकालो और यहाँ पर एक भव्य मन्दिर स्थापित करो। स्वामी जी ने भगवान के आदेश को शिरोधार्य किया और गलतातीर्थ के नीचे एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया जिसकी गिनती देश के चोटी के मन्दिरों में होती है।

स्वामी जी बाल्यकाल से ही गृह त्याग करके जयपुर में निवास

करने लगे थे। तब ही वे नित्यप्रति मूल रामायण का पाठ किया करते थे। हनुमान जी ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। एक रात्रि वे वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके आए और आवेश में आकर कहने लगे कि तुम हर समय रामायण पढ़ते रहते हो, इससे आस पास के लोग अपने दैनिक कार्यों में बाधा अनुभव करते हैं। स्वामी जी ने उन्हें कहा कि मैं अत्यन्त दुखी जीव हूँ। अपने दुःख की निवृत्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ। इसमें किसी को क्या कष्ट हो सकता है। इस पर हनुमान जी ने स्वामी जी के दुःख का विवरण पूछना चाहा परन्तु स्वामी जी ने स्पष्ट उत्तर दिया कि जिसके पास दुःख को दूर करने की सामर्थ्य है, वह तो मेरी ओर कोई ध्यान नहीं देते। तुम मेरे दुःख को क्या दूर करोगे। तुम्हें बताने से भी क्या लाभ है ? अन्त में हनुमान जी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए और विभिन्न प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए बाल्मीकीय रामायण के अनेकों प्रयोग उन्हें बताए। स्वामी जी ने उन प्रयोगों को व्यावहारिक रूप दिया। परिणाम स्वरूप वे उच्चकोटि के विद्वान, वक्ता और सिद्ध महात्मा हुए। इनकी ख्याति सुनकर वृन्दावन के सेठ राधाकृष्ण जी दर्शनार्थ जयपुर आए थे और प्रभावित होकर लक्ष्मी नारायण मन्दिर के बाहरी परकोटे को बनवाने के लिए सहमत हो गये। सेठ राधाकृष्ण जी ने ही वृन्दावन के प्रसिद्ध श्री रङ्गमन्दिर का निर्माण कराया था।

स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज अपने इस यश और वैभव का पूर्ण श्रेय रामायण साधना को ही देते हैं। वे स्वीकार करते थे कि इसी साधना के फल स्वरूप उन्हें यह असाधारण सफलताएँ प्राप्त हुई हैं।

—●—

जीवनी शक्ति का संचार

ॐ की प्राप्ति ध्वनि ने कितने ही अत्यन्त भयावह रोगों का निराकरण किया। इङ्गलैण्ड के (guy) (गाई) तथा Birth Homes चिकित्सालय में 'ॐ' की पावन ध्वनि ने कितने ही रोगियों को अत्यन्त भीषण रोगों से मुक्त कराया। डबलिन के रोठण्डा चिकित्सालय में महिलाओं पर इसका अभूतपूर्व प्रभाव देखा गया है। मद्रास, देहरादून व चिंगलपेट के चिकित्सालयों में ओंकार ध्वनि के प्रयोग किये गये। फल स्वरूप कुष्ठ रोगियों को आशाजनक लाभ प्रतीत हुआ। इस तरह से सूखी नाड़ियों में भी जीवनी शक्ति संचारित की है।

★●★

खोया पुत्र मिला

ग्राम वाराडीह, थाना देवरी जि० हजारी बाग (विहार) के श्री टुपलाल राय का पुत्र श्रीराम प्रसाद बी० ए० की परीक्षा में असफल हुआ तो घर छोड़कर चला गया। चारों ओर ढूंढ़ खोज की गई परन्तु कोई उसका पता न चला। तब उन्होंने सीताराम युगल मन्त्र का जाप आरम्भ किया। एक दिन उनके मन में दैवी स्फूर्णा हुई कि उन्हें हरिद्वार-ऋषिकेश जाना चाहिए। यह घटना जून १९५८ की है। गीता भवन ऋषिकेश में सत्संग का आयोजन चल रहा था। वहाँ भी उन्होंने राम-नाम की महिमा सुनी और उन्होंने अपनी साधना का क्रम और भी तीव्रगति से आरम्भ कर दिया। एक दिन दैवी प्रेरणा से रात के डेढ़ बजे तक गङ्गा-तट पर मन्त्र जाप करते रहे। प्रातः काल जब वह स्वर्गाश्रम के सत्सङ्ग में जा रहे थे तो उनका पुत्र

सन्यासी वेष में सामने से आता दिखाई दिया। उसने चरण स्पर्श किए और घर जाने के लिए सहमत हो गया।

आयु का आदान प्रदान

इतिहास का अध्ययन करने वाले भली भाँति जानते हैं कि जब हुमायूँ मृत्यु शैय्या पर पड़ा था तो बाबर ने हुमायूँ की दीर्घायु के लिए भगवान से आर्त भाव से यह प्रार्थना की थी कि यदि हुमायूँ की आयु कुछ शेष नहीं है तो मेरी सारी आयु हुमायूँ को दे दी जाय जिससे वह अपने यौवन का भरपूर उपयोग कर सके। प्रार्थना सच्चे मन से की गई थी। पवित्र मन से की गई प्रार्थना (मन्त्र) में अपार बल होता है। इतिहास बताता है कि बाबर की प्रार्थना (मन्त्र) का अनुकूल प्रभाव पड़ा और हुमायूँ का स्वास्थ्य ठीक होने लगा। ज्यों-२ हुमायूँ का स्वास्थ्य सुधरने लगा त्यों-२ बाबर का रोग बढ़ता गया और अन्त में उसकी मृत्यु हो गई। हुमायूँ काफी समय तक मुगल शासक के रूप में राज्य करता रहा।

कुछ वर्ष पहले की एक ऐसी ही घटना है, नागालैण्ड में पहाड़ी क्षेत्रों में उपद्रव चल रहे थे। एक बार छिपे नागाओं ने सीमांत रेलवे को दुर्घटनाग्रस्त किया। उस गाड़ी में एक उच्च पुलिस अधिकारी घायल हुआ। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी। उसकी माता ने अपने इष्ट मन्त्र का जाप आरम्भ किया और भगवान से प्रार्थना की कि उसकी शेष आयु उसके पुत्र को मिल जाय। भगवान के दरबार में आर्तभाव से की गई प्रार्थना सदैव सुनी जाती है। इस प्रार्थना को भी सुना और स्वीकारा गया। वह पुलिस अधिकारी बच गया परन्तु उसकी माँ का प्राणान्त हो गया।

भावी शिशु में असाधारण गुणों का विकास

रुक्मणी ने जब भगवान कृष्ण से उनके रूप और गुणों के अनुकूल एक पुत्र प्राप्त करने की याचना की तो भगवान कृष्ण ने बद्रिकाश्रम में निवास करके बारह वर्ष तक गायत्री-मन्त्र की घोर तपस्या करने का निश्चय किया। उन्होंने अनुष्ठान के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया। आहार-विहार और संयम की ओर पूरा ध्यान दिया। वेद अध्ययन की साधना भी इसके साथ-साथ चलती रही। बारह वर्ष की तपोसाधना के फलस्वरूप रुक्मणी के प्रद्युम्न नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो रूप और गुणों में भगवान कृष्ण के समान ही था। इसका श्रेय भगवान ने गायत्री मन्त्र की साधना को ही दिया।

———

परीक्षा में सफल रहा

सुदेशगढ़ के निवासी श्री अम्बाप्रसाद का एक मात्र पुत्र बी. ए. की परीक्षा में तीन बार असफल होता गया। अब उसमें इतना साहस और धैर्य नहीं रहा कि वह अध्ययन करके पुनः परीक्षा दे। उसके पिता ने किसी महात्मा से प्रार्थना की। महात्मा ने दयावश एक साधन बताया कि भगवान हयग्रीव की पूजा-उपासना करो। उनके मन्त्र का जाप निरन्तर करो। नित्य प्रति निम्नलिखित प्रार्थना किया करो तुम्हारे उद्देश्य की निश्चित रूप से पूर्ति होगी।

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे।।

इस साधना के फलस्वरूप वह विद्यार्थी बी. ए. की परीक्षा में विशेष योग्यता के साथ सफल रहा।

शराब की पुरानी आदत छूटी

एक मुंशी जी को शराब की बुरी लत थी। वे पढ़े लिखे थे शराब की शारीरिक व मानसिक हानियों से भली भाँति परिचित थे। परन्तु संकल्प शक्ति के अभाव में इसे छोड़ना उनके वश की बात नहीं थी। एक बार वाराणसी के विख्यात योगी महात्मा श्यामाचरण लाहिड़ी से उनका साक्षात्कार हुआ। मुन्शी जी ने शराब छोड़ने का उपाय पूछा। महात्माजी ने राम-नाम की साधना करने का आदेश दिया। मुन्शी जी ने निष्ठा पूर्वक राम-नाम का जाप किया। साधना सफल हुई और उनकी शराब की आदत छूट गई।

* * *

बाबा ने रेलगाड़ी रोक दी

नीम करौली बाबा उन चमत्कारी सन्तों में से थे जिनकी मन्त्र सिद्धि के प्रत्यक्ष चमत्कारों को डा० सम्पूर्णानन्द, श्री के. एम. मुन्शी तथा कांग्रेस अध्यक्ष डा० शंकरदयाल शर्मा आदि को स्वयं देखकर अनेक बार दांतों तले अंगुली दबानी पड़ी थी।

बाबा के सम्बन्ध में रेलगाड़ी रोक देने की घटना बहुत प्रचलित है। बताया जाता है कि रेलयात्रा के दौरान टिकिट निरीक्षक ने बिना टिकट होने पर उन्हें नीचे उतार दिया। उन्होंने कहा "चला लो अपनी रेलगाड़ी।"

ड्राइवर ने लाख कोशिश की रेल इन्जन टस से मस नहीं हुआ। जब गार्ड बाबा के चरणों में गिरा और उन्हें ससम्मान रेल में बिठाया तो गाड़ी तुरन्त चल दी।

बाबा अत्यन्त फक्कड़ व मस्त सन्त थे। अधिकांशतः नैनीताल के कैंची नामक रमणीय स्थान के पास रहा करते थे। वहाँ उन्होंने

अपने इष्टदेव भगवान हनुमान का भव्य मन्दिर बनवाया हुआ था। सुबह से शाम तक सैकड़ों व्यक्ति उनके दर्शनों को आते व सारे दिन भण्डारा चलता रहता। बड़े-बड़े राजा महाराजा से लेकर, मन्त्रियों व सरकारी अधिकारियों से लेकर छोटे से छोटे वर्ग का आदमी बाबा का भक्त था। किन्तु किसी से याचना नहीं की, यह सब मन्त्र सिद्धि का ही चमत्कार था।

★ ★ ★

जब पाण्डवों के नाश की योजना असफल हुई

पाण्डव कौरवों से जुए में हारकर वनवास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। अतिथियों को भोजन कराने की सुविधा के लिए सूर्य भगवान ने युधिष्ठर को ऐसा पात्र दिया था जिससे द्रोपदी भोजन से पूर्व अपने समस्त अतिथियों को भर पेट भोजन करा सकती थी। एकबार महर्षि दुर्वासा दुर्योधन के आतिथ्यग्रहण से प्रसन्न हुए। दुर्योधन ने महर्षि दुर्वासा से यह निवेदन किया कि वन में आप हमारे भाई पाण्डवों का भी आतिथ्य ग्रहण करें। परन्तु आप जांय उस समय, जब द्रोपदी भोजन कर चुकी हो। आपके समस्त शिष्य भी आपके साथ हों। महर्षि प्रसन्न थे। उन्होंने दुर्योधन का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दुर्योधन यह भली भांति जानते थे कि जब तक द्रोपदी स्वयं भोजन न कर लेगी तब तक सूर्य द्वारा प्रदत्त पात्र से वे हजारों अतिथियों को भी भोजन कराने में समर्थ हैं। जब वह भोजन कर चुकी होंगी और महर्षि वहां पहुंचेंगे तो उनके लिए भोजन की

व्यवस्था असम्भव हो जायेगी। महर्षि निश्चत रूप से पाण्डवों को शाप देंगे।

कुछ समय बाद महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों सहित काम्यक् वन में दोपहर के बाद पाण्डवों का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए पहुँच गये और जाते ही कहने लगे कि हम सब इस समय बहुत भूखे हैं। आप हमारे भोजन की व्यवस्था करें। हम निकटवर्ती सरिता में स्नान व संध्यावन्दन करके शीघ्र ही लौटते हैं। उस समय द्रोपदी भोजन कर चुकी थी। युधिष्ठर अत्यन्त चिंतित थे कि अब इतने अधिक अतिथियों की भोजन व्यवस्था असम्भव ही प्रतीत होती है। महर्षि निश्चित रूप से शाप देकर सबको भस्म कर देंगे। द्रोपदी ने सभी को आश्वासन दिया कि मेरे प्रभु हमारी सभी चिन्ताएँ दूर कर देंगे। भगवान कृष्ण कुछ देर पहले पाण्डवों से वन में मिलकर द्वारिका के लिए रवाना हो गये थे। द्रोपदी को उन पर विश्वास था। वह अपनी कुटिया में गई और आसन पर बैठकर कृष्ण मन्त्र का जाप करने लगी और भगवान से प्रार्थना करने लगी—जिस प्रकार से एक बार पहले वस्त्र अवतार लेकर मेरी लाज बचाई थी, उसी तरह एक बार फिर मेरी सहायता करें। द्रोपदी एकाग्र भाव से प्रभु का स्मरण कर रही थी। पवित्र भाव से की गई आर्त-पुकार प्रभु के पास कुछ ही क्षणों में पहुँच जाती है और पात्रता को देखकर वे तुरन्त इसकी व्यवस्था भी कर देते हैं।

न जाने कैसे भगवान कृष्ण को द्रोपदी का संदेश वे तार के तार से मिला कि वे बीच मार्ग से ही लौट पड़े। अब कुछ ही समय में उनका रथ द्रोपदी की कुटिया के सामने था। वह इस बार किसी प्रकार का भी शिष्टाचार निभाए बिना द्रोपदी की कुटिया में प्रविष्ट हुए और कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है। जल्दी

से कुछ भोजन दे दो। द्रोपदी प्रसन्नता से खिल उठी और कहने लगी-महर्षि दुर्वासा को उनके दस हजार शिष्यों सहित भोजन कराना है मैंने स्वयं भोजन कर लिया है। कृष्ण ने कहा, वह पात्र लाओ। उसमें अवश्य कुछ होगा ही। उसी से मेरी तृप्ति हो जायेगी। भगवान ने वह पात्र देखा। उसके भीतर एक शाक का पत्ता चिपका हुआ था। वह शाक का पत्ता भगवान कृष्ण ने अपने मुख में डाला और कहा कि इससे विश्वात्मा तृप्त हो जाय और स्वयं डकार ले ली। जब भगवान तृप्त हो गये तो विश्व में और कौन अतृप्त रह सकता है। सरिता में स्नान करने वाले दुर्वासा और उनके शिष्यों को भी डकार आने लगी। उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि उन्होंने इतना भर पेट भोजन कर लिया है कि और कुछ भी ग्रहण करने की गुंजाइश नहीं है। अब उन लोगों ने यह निश्चय किया कि अब पाण्डवों के पास जाने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि हम लोगों में से कोई भी भोजन करने की स्थिति में नहीं है। पाण्डवों के पास पहले ही अन्नाभाव है। यदि हमने अन्न को गँवाया तो अम्बरीष की तरह युधिष्ठर भी हमारी वही गति करेंगे और शाप देकर नष्ट कर देंगे। महर्षि अपने शिष्यों सहित बिना भोजन किए हुए चले गये। युधिष्ठर ने उन्हें बुलाने के लिये सहदेव को भेजा परन्तु वहां कोई दिखाई न दिया।

सत्य है प्रभु का जब भी नाम स्मरण किया जाय वे भक्त की प्रार्थना को सुनकर आवश्यक सहायता करते हैं।

—:समाप्त:—